1 प्रेमचन्द

➥ व्यक्तित्व

प्रेमचन्द का जन्म वाराणसी जिले के लमही ग्राम में 31 जुलाई, 1880 ई० को हुआ था। आपने बी० ए० तक शिक्षा प्राप्त की। प्रेमचन्द का बचपन कठिनाइयों में व्यतीत हुआ। जीवन की विषम परिस्थितियों में भी उनका अध्ययन-क्रम चलता रहा। उन्होंने उर्दू का भी विशेष ज्ञान प्राप्त किया। जीवन-संघर्ष में जूझते हुए वह एक स्कूल-अध्यापक से सब इंसपेक्टर के पद तक पहुँचे। वे कुछ समय तक काशी-विद्यापीठ में अध्यापक भी रहे। उन्होंने कई साहित्यिक पत्रों का सम्पादन किया, जिनमें 'हंस' प्रमुख था। आत्म-गौरव के साथ उन्होंने साहित्य के उच्च आदर्शों की रक्षा की। उनका बचपन का नाम धनपतराय था, किन्तु 'उर्दू' में वे 'नवाबराय' के नाम से कहानी लिखते थे। वे अंग्रेजी सरकार के कोप-भाजन भी रहे। उन्होंने प्रेमचन्द नाम से हिन्दी में सामाजिक कहानियों की रचना की तथा शीघ्र ही लोकप्रिय कथाकार हो गये। हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं ने उनकी रचनाओं को अत्यधिक महत्त्व दिया। उपन्यासकार, कहानीकार, सम्पादक, अनुवादक, नाटककार, निबन्ध लेखक आदि के रूप में प्रेमचन्द प्रतिष्ठित हुए। उनके कृतित्व में जीवन-सत्य का आदर्श रूप उभरकर आया है, परिणामस्वरूप वे सार्वभौम कलाकार के रूप में प्रतिष्ठित हुए। 8 अक्टूबर, 1936 ई० को आपका निधन हो गया।

➥ कृतित्व

प्रेमचन्द के **कहानी-संग्रह** हैं—**सप्त सरोज, नवनिधि, प्रेमपूर्णिमा, बड़े घर की बेटी, लाल फीता, नमक का दारोगा, प्रेम-पचीसी, प्रेम-प्रसून, प्रेम-द्वाद्वशी, प्रेम-प्रमोद, प्रेम-तीर्थ, प्रेम-चतुर्थी, प्रेम-प्रतिज्ञा, सप्तसुमन, प्रेम-पंचमी, प्रेरणा, समर-यात्रा, पंच-प्रसून, नवजीवन** आदि। आपके प्रसिद्ध **उपन्यास** हैं—**सेवासदन, प्रेमाश्रम, निर्मला, रंगभूमि, कायाकल्प, गबन, कर्मभूमि, गोदान, मंगलसूत्र** (अपूर्ण)। आपने **'संग्राम', 'कर्बला', 'प्रेम की वेदी'** आदि नाटक भी लिखे। सम्पादन, जीवनी, निबन्ध, अनुवाद और बालोपयोगी साहित्य में भी आपका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा।

➥ कथा-शिल्प एवं भाषा-शैली

प्रेमचन्द का विशाल कहानी साहित्य मानव-प्रकृति, मानव-इतिहास तथा मानवीयता के हृदयस्पर्शी एवं कलापूर्ण चित्रों से परिपूर्ण है। उन्होंने सांस्कृतिक उन्नयन, राष्ट्रसेवा, आत्मगौरव आदि के सजीव एवं रोचक चित्रण के साथ-साथ मानव के वास्तविक स्वरूप को उभारने में अपूर्व कौशल दिखलाया है। उनकी कहानियों में दमन, शोषण एवं अन्याय के विरुद्ध आवाज बुलन्द की गयी है तथा सामाजिक विकृतियों पर व्यंग्य के माध्यम से प्रहार किया गया है।

प्रेमचन्द की कहानी-रचना का केन्द्र-बिन्दु मानव है। उनकी कहानियों में लोक-जीवन के विविध पक्षों का मार्मिक चित्रण किया गया है। कथा-वस्तु का गठन समाज के विभिन्न धरातलों को स्पर्श करते हुए यथार्थ-जगत् की घटनाओं, भावनाओं, चिन्तन-मनन एवं जीवन संघर्षों को लेकर चलता है। 'शतरंज के खिलाड़ी', 'पूस की रात', 'रानी सारंधा' तथा 'आत्माराम' आपकी प्रसिद्ध कहानियाँ हैं। प्रेमचन्द ने पात्रों का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। साथ ही, मानव की अनुभूतियों एवं संवेदनाओं को भी महत्त्व दिया है। वे मानव-मन के सूक्ष्मतम भावों का आकर्षक चित्र उभारने में सफल हुए हैं।

प्रेमचन्द जी ने भाषा-शैली के क्षेत्र में उदार एवं व्यापक दृष्टिकोण अपनाया है। मुहावरों एवं लोकोक्तियों की लाक्षणिक तथा आकर्षक योजना ने उनकी अभिव्यक्ति को सशक्त बना दिया है। उनकी कहानियों के वास्तविक सौन्दर्य का मुख्य आधार उनके पात्रों की सहजता है, जिसके लिए प्रेमचन्द जी ने जन-भाषा का स्वाभाविक प्रयोग किया है। उनकी भाषा में व्यावहारिकता एवं साहित्यिकता का सजीव समन्वय है। भाषा-शैली सरल, रोचक, प्रवाह एवं प्रभावपूर्ण है।

कहानी के विकास एवं सौन्दर्य के अनुकूल वातावरण तथा परिस्थितियों के कलात्मक चित्र पाठक के हृदय पर अमिट छाप छोड़ते हैं। प्रेमचन्द जी की कहानियों का लक्ष्य मानव-जीवन के स्वरूप, उसकी गति तथा उसके सत्य की व्याख्या करना रहा है, जिसमें उन्हें पूर्ण सफलता मिली है। प्रेमचन्द की कहानी-कला की मौलिकता, गतिशीलता एवं व्यापकता ने हिन्दी कहानी को केवल समृद्ध ही नहीं बनाया, वरन् उसके विकास एवं विस्तार के अगणित स्रोतों का उद्घाटन भी किया है।

बलिदान

(1)

मनुष्य की आर्थिक अवस्था का सबसे ज्यादा असर उसके नाम पर पड़ता है। मौजे बेला के ठाकुर जब से कान्सटिबिल हो गये हैं, उनका नाम मंगलसिंह हो गया है, अब उन्हें कोई मँगरू कहने का साहस नहीं कर सकता। कल्लू अहीर ने जबसे हलके के थानेदार साहब से मित्रता कर ली है और गाँव का मुखिया हो गया है, उसका नाम कालिकादीन हो गया है। अब उसे कोई कल्लू कहे तो आँखें लाल-पीली करता है। इसी प्रकार हरखचन्द्र कुरमी अब हरखू हो गया है। आज से बीस साल पहले उसके यहाँ शक्कर बनती थी, कई हल की खेती होती थी और कारोबार खूब फैला हुआ था। लेकिन विदेशी शक्कर की आमद ने उसे मटियामेट कर दिया। धीरे-धीरे कारखाना टूट गया, जमीन टूट गयी, ग्राहक टूट गये और वह भी टूट गया। सत्तर वर्ष का बूढ़ा जो एक तकियेदार माचे पर बैठा हुआ नारियल पिया करता था, अब सिर पर टोकरी लिये खाद फेंकने जाता है। परन्तु उसके मुख पर भी एक प्रकार की गम्भीरता, बातचीत में अब भी एक प्रकार की अकड़, चाल-ढाल में अब भी एक प्रकार का स्वाभिमान भरा हुआ है। इन पर काल की गति का प्रभाव नहीं पड़ा। रस्सी जल गयी, पर बल नहीं टूटा। भले दिन मनुष्य के चरित्र पर, सदैव के लिए अपना चिह्न छोड़ जाते हैं। हरखू के पास अब केवल पाँच बीघा जमीन है। केवल दो बैल हैं। एक हल की खेती होती है।

लेकिन पंचायतों में, आपस की कलह में, उसकी सम्मति अब भी सम्मान की दृष्टि से देखी जाती है। वह जो बात कहता है, बेलाग कहता है और गाँव के अनपढ़े उसके सामने मुँह नहीं खोल सकते।

हरखू ने अपने जीवन में कभी दवा नहीं खायी। वह बीमार जरूर पड़ता है, कुँआर मास में मलेरिया से कभी न बचता था। लेकिन दस-पाँच दिन में वह बिना दवा खाये ही चंगा हो जाता था। इस वर्ष भी कार्तिक में बीमार पड़ा और यह समझकर कि अच्छा तो हो ही जाऊँगा, उसने कुछ परवाह न की। परन्तु अबकी ज्वर मौत का परवाना लेकर चला था। एक सप्ताह बीता, दूसरा सप्ताह बीता, पूरा महीना बीत गया; पर हरखू चारपाई से न उठा। अब उसे दवा की जरूरत मालूम हुई। उसका लड़का गिरधारी कभी नीम के सींके पिलाता, कभी गुर्च का सत, कभी गदापूरना की जड़; पर इन ओषधियों से कोई फायदा न होता था। हरखू को विश्वास हो गया कि अब संसार से चलने के दिन आ गये।

एक दिन मंगलसिंह उसे देखने गये, बेचारा टूटी खाट पर पड़ा राम-राम जप रहा था। मंगलसिंह ने कहा—बाबा, बिना दवा खाये अच्छे न होगे; कुनैन क्यों नहीं खाते? हरखू ने उदासीन भाव से कहा—तो लेते आना।

दूसरे दिन कालिकादीन ने आकर—बाबा, दो-चार दिन कोई दवा खा लो। अब तुम्हारी जवानी की देह थोड़े है कि बिना दवा-दर्पन के अच्छे हो जाओगे?

हरखू ने उसी मंद भाव से कहा—तो लेते आना। लेकिन रोगी को देख आना एक बात है, दवा लाकर उसे देना दूसरी बात है। पहली बात शिष्टाचार से होती है, दूसरी सच्ची संवेदना से। न मंगलसिंह ने खबर ली, न कालिकादीन ने, न किसी तीसरे ही ने। हरखू दालान में खाट पर पड़ा रहता। मंगलसिंह कभी नजर आ जाते तो कहता—भैया, वह दवा नहीं लाये? मंगलसिंह कतराकर निकल जाते। कालिकादीन दिखायी देते तो उनसे भी यही प्रश्न करता; लेकिन वह भी नजर बचा लेता। या तो उसे यह सूझता ही नहीं था कि दवा पैसों के बिना नहीं आती या वह पैसों को जान से भी प्रिय समझता था अथवा वह जीवन से निराश हो गया था। उसने कभी दवा के दाम की बात नहीं की। दवा न आयी। उसकी दशा दिनों-दिन बिगड़ती गयी। यहाँ तक कि पाँच महीने कष्ट भोगने के बाद उसने ठीक होली के दिन शरीर त्याग दिया। गिरधारी ने उसका शव बड़ी धूमधाम से निकाला। क्रिया-कर्म बड़े हौसले से किया। कई गाँव के ब्राह्मणों को निमन्त्रित किया।

बेला में होली न मनायी गयी, न अबीर और गुलाल उड़ी, न डफली बजी, न भंग की नालियाँ बहीं। कुछ लोग मन में हरखू को कोसते जरूर थे कि बुड्ढे को आज ही मरना था, दो-चार दिन बाद मरता।

लेकिन इतना निर्लज्ज कोई न था कि शोक में आनन्द मनाता। वह शहर नहीं था, जहाँ कोई किसी के काम में शरीक नहीं होता, जहाँ पड़ोसी के रोने-पीटने की आवाज हमारे कानों तक नहीं पहुँचती।

(2)

हरखू के खेत गाँव वालों की नजर पर चढ़े हुए थे। पाँच बीघा जमीन कुएँ के निकट, खाद-पाँस से लदी हुई मेड़-बाँध से ठीक थी। उनमें तीन-तीन फसलें पैदा होती थीं। हरखू के मरते ही उन पर चारों ओर से धावे होने लगे। गिरधारी तो क्रिया-कर्म में फँसा हुआ था। उधर गाँव के मनचले किसान लाला ओंकारनाथ को चैन न लेने देते थे, नजराने की बड़ी-बड़ी रकमें पेश हो रही थीं। कोई साल भर का लगान पेशगी देने को तैयार था, कोई नजराने की दूनी रकम का दस्तावेज लिखने को तुला हुआ था। लेकिन ओंकारनाथ सबको टालते रहते थे। उनका विचार था कि गिरधारी का हक सबसे ज्यादा है। वह अगर दूसरों से कम भी नजराना दे तो खेत उसी को देने चाहिए। अस्तु, जब गिरधारी क्रिया-कर्म से निवृत्त हो गया और चैत का महीना भी समाप्त होने आया, तब जमींदार साहिब ने गिरधारी को बुलाया और उससे पूछा—खेतों के बारे में क्या कहते हो? गिरधारी ने रोकर कहा—उन्हीं खेतों का ही आसरा है, जोतूँगा नहीं तो क्या करूँगा?

ओंकारनाथ— नहीं, जरूर जोतो, खेत तुम्हारे हैं। मैं तुमसे छोड़ने को नहीं कहता हूँ। हरखू ने उन्हें बीस साल तक जोता। उन पर तुम्हारा हक है। लेकिन तुम देखते हो अब जमीन की दर कितनी बढ़ गयी है। तुम आठ रुपये बीघे पर जोतते थे, मुझे 10 रु0 मिल रहे हैं। और नजराने के रुपये सो अलग। तुम्हारे साथ रियायत करके लगान वही रखता हूँ; पर नजराने के रुपये तुम्हें देने पड़ेंगे।

गिरधारी—सरकार, मेरे घर में तो इस समय रोटियों का भी ठिकाना नहीं है। इतने रुपये कहाँ से लाऊँ? जो कुछ जमा-जथा थी, दादा के काम में उठ गयी। अनाज खलिहान में है। लेकिन दादा के बीमार हो जाने से उपज भी अच्छी नहीं हुई। रुपये कहाँ से लाऊँ?

ओंकारनाथ—यह सच है लेकिन मैं इससे ज्यादा रियायत नहीं कर सकता।

गिरधारी—नहीं सरकार, ऐसा न कहिए। नहीं तो हम बिना मारे मर जायेंगे। आप बड़े होकर कहते हैं तो बैल-बधिया बेच कर पचास रुपया कर सकता हूँ। इससे बेशी की हिम्मत नहीं पड़ती।

ओंकारनाथ चिढ़कर बोले—तुम समझते होगे कि हम ये रुपये लेकर घर में रख लेते हैं और चैन की बंशी बजाते हैं। लेकिन हमारे ऊपर जो कुछ गुजरती है, हमीं जानते हैं। कहीं यह चंदा, कहीं वह इनाम। इनके मारे कचूमर निकल जाता है। बड़े दिन में सैकड़ों रुपये डालियों में उड़ जाते हैं। जिसे डाली न दो, वही मुँह फुलाता है। जिन चीजों के लिए लड़के तरस कर रह जाते हैं, उन्हें बाहर से मँगा कर डालियों में सजाता हूँ। उस पर कभी कानूनगो आ गये, कभी तहसीलदार, कभी डिप्टी साहब का लश्कर आ गया। सब मेरे मेहमान होते हैं। अगर न करूँ तो नक्कू बनूँ और सबकी आँखों में काँटा बन जाऊँ। साल में हजार-बारह सौ मोदी को इस रसद खुराक के मद में देने पड़ते हैं। यह सब कहाँ से आवे? बस, यही जी चाहता है कि छोड़कर निकल जाऊँ लेकिन हमें तो परमात्मा ने इसलिए बनाया है कि एक से रुपया सता कर लें और दूसरे को रो-रोकर दें, यही हमारा काम है। तुम्हारे साथ इतनी रियायत कर रहा हूँ। लेकिन तुम इतनी रियायत पर भी खुश नहीं होते तो हरि इच्छा। नजराने में एक पैसे की भी रियायत न होगी। अगर एक हफ्ते के अन्दर दाखिल करोगे तो खेत जोतने पाओगे, नहीं तो नहीं; मैं दूसरा प्रबन्ध कर दूँगा।

(3)

गिरधारी उदास होकर घर आया। 100 रु0 का प्रबन्ध करना उसके काबू के बाहर था। सोचने लगा—अगर दोनों बैल बेच दूँ तो खेत ही लेकर क्या करूँगा। घर बेचूँ तो यहाँ लेने वाला ही कौन है? और फिर बाप-दादों का नाम डूबता है। चार-पाँच पेड़ हैं लेकिन उन्हें बेच कर 25 रु0 या 30 रु0 से अधिक न मिलेंगे। उधार लूँ तो देता कौन है? अभी बनिये के 50 रु0 सिर पर चढ़े हैं। वह एक पैसा भी न देगा। घर में गहने भी तो नहीं हैं। नहीं उन्हीं को बेचता। ले-देकर एक हँसली बनवायी थी, वह भी बनिये के घर पर पड़ी हुई है। साल भर हो गया, छुड़ाने की नौबत न आयी। गिरधारी और उसकी स्त्री सुभागी दोनों ही इसी चिन्ता में पड़े रहते, लेकिन कोई उपाय न सूझता था। गिरधारी को खाना-पीना अच्छा न लगता, रात को नींद न आती। खेतों के निकलने का ध्यान आते ही उनके हृदय में हूक-सी उठने लगती। हाय! वह भूमि जिसे हमने वर्षों जोता, जिसे खाद से पाटा, जिसमें मेड़ें रखीं, जिसकी मेड़ें बनायीं उसका मजा अब दूसरा उठायेगा?

ये खेत गिरधारी के जीवन के अंश हो गये थे। उनकी एक-एक अंगुल भूमि उसके रक्त से रँगी हुई थी। उनका एक-एक परमाणु उसके पसीने से तर हो गया था।

उनके नाम उसकी जिह्वा पर उसी तरह आते थे जिस तरह अपने तीनों बच्चों के। कोई चौबीसों था, कोई बाइसों था, कोई नाले वाला, कोई तलैया वाला। इन नामों के स्मरण होते ही खेतों का चित्र उसकी आँखों के सामने खिंच जाता था। वह इन खेतों की चर्चा इस तरह करता मानो वे सजीव हैं। मानो उसके भले-बुरे के साथी हैं। उसके जीवन की सारी आशाएँ, सारी इच्छाएँ, सारे मनसूबे, सारी मन की मिठाइयाँ, सारे हवाई किले इन्ही खेतों पर अवलम्बित थे। इसके बिना वह जीवन की कल्पना ही नहीं कर सकता था और वे ही अब हाथ से निकले जाते हैं। वह घबरा कर घर से निकल जाता और घण्टों उन्हीं खेतों की मेड़ों पर बैठा हुआ रोता, मानो उससे विदा हो रहा हो। इस तरह एक सप्ताह बीत गया और गिरधारी रुपये का कोई बन्दोबस्त न कर सका। आठवें दिन उसे मालूम हुआ कि कालिकादीन ने 100 रुपये नजराने देकर 10 रु0 बीघे पर खेत ले लिये। गिरधारी ने एक ठण्डी साँस ली। एक क्षण बाद वह दादा का नाम लेकर बिलख-बिलख रोने लगा। उस दिन घर में चूल्हा नहीं जला। ऐसा मालूम होता था मानो हरखू आज ही मरा।

(4)

लेकिन सुभागी यों चुपचाप बैठने वाली स्त्री न थी। वह क्रोध से भरी हुई कालिकादीन के घर गयी और उसकी स्त्री को खूब लथेड़ा—कल का बानी आज का सेठ, खेत जोतने चले हैं देखें, कौन मेरे खेत में हल ले जाता है? अपना और उसका लोहू एक कर दूँ। पड़ोसियों ने उसका पक्ष लिया, सब तो हैं, आपस में यह चढ़ा-उतरी नहीं करना चाहिए। नारायण ने धन दिया, तो क्या गरीबों को कुचलते फिरेंगे? सुभागी ने समझा, मैंने मैदान मार लिया। उसका चित्त शान्त हो गया। किन्तु वही वायु जो पानी में लहरें पैदा करती हैं, वृक्षों को जड़ से उखाड़ डालती हैं। सुभागी तो पड़ोसियों की पंचायत में अपने दुखड़े रोती और कालिकादीन की स्त्री से छेड़-छेड़ लड़ती। इधर गिरधारी अपने द्वार पर बैठा हुआ सोचता, अब मेरा क्या हाल होगा? अब यह जीवन कैसे कटेगा? ये लड़के किसके द्वार पर जायेंगे? मजदूरी का विचार करते ही उसका हृदय व्याकुल हो जाता। इतने दिनों तक स्वाधीनता और सम्मान का सुख भोगने के बाद अधम चाकरी की शरण लेने के बदले वह मर जाना अच्छा समझता था। वह अब तक गृहस्थ था, उसकी गणना गाँव के भले आदमियों में थी, उसे गाँव के मामले में बोलने का अधिकार था। उसके घर में धन न था, पर मान था। नाई, बढ़ई, कुम्हार, पुरोहित, भाट, चौकीदार, ये सब उसका मुँह ताकते थे। अब यह मर्यादा कहाँ! अब कौन उसकी बात पूछेगा? कौन उसके द्वार पर आवेगा? अब उसे किसी के बराबर बैठने का, किसी के बीच में बोलने का हक नहीं रहा। अब उसे पेट के लिए दूसरों की गुलामी करनी पड़ेगी। अब पहर रात रहे कौन बैलों को नाँद में लगावेगा? वह दिन अब कहाँ, जब गीत गा-गाकर हल चलाता था। अपने लहलहाते हुए खेतों को देखकर फूला न समाता था। खलिहान में अनाज का ढेर सामने रखे अपने को राजा समझता था। अब अनाज के टोकरे भर-भर कर कौन लावेगा?

अब खत्ते कहाँ? बखार कहाँ? यही सोचते-सोचते गिरधारी की आँखों से आँसू की झड़ी लग जाती थी। गाँव के दो-चार सज्जन, जो कालिकादीन से जलते थे, कभी-कभी गिरधारी को तसल्ली देने आया करते थे, पर वह उनसे भी खुलकर न बोलता। उसे मालूम होता था कि मैं सबकी नजर में गिर गया हूँ।

अगर कोई समझाता कि तुमने क्रिया-कर्म में व्यर्थ इतने रुपये उड़ा दिये, तो उसे बहुत दुःख होता। वह अपने उस काम पर जरा भी न पछताता। मेरे भाग्य में जो लिखा है वह होगा; पर दादा के ऋण से उऋण हो गया। उन्होंने अपनी जिन्दगी में चार बार खिलाकर खाया। क्या मरने के पीछे इन्हें पिण्डे-पानी को तरसाता?

इस प्रकार तीन मास बीत गये और असाढ़ आ पहुँचा। आकाश में घटाएँ आयीं, पानी गिरा, किसान हल-जुए ठीक करने लगे। बढ़ई हलों की मरम्मत करने लगा। गिरधारी पागल की तरह कभी घर के भीतर जाता, कभी बाहर आता, अपने हलों को निकाल-निकाल देखता; उसकी मुठिया टूट गयी है, इसकी फाल ढीली हो गयी है, जुए में सैला नहीं है। यह देखते-देखते वह एक क्षण अपने को भूल गया। दौड़ा हुआ बढ़ई के यहाँ गया और बोला—रज्जू मेरे हल भी बिगड़े हुए हैं, चलो बना दो। रज्जू ने उसकी ओर करुणभाव से देखा और अपना काम करने लगा। गिरधारी को होश आ गया; नींद से चौंक पड़ा, ग्लानि से उसका सिर झुक गया, आँखें भर आयीं। चुपचाप घर चला आया।

गाँव के चारों ओर हलचल मची हुई थी। कोई सन के बीज खोजता फिरता था, कोई जमींदार के चौपाल से धान के बीज लिये आता था, कहीं सलाह होती थी, किस खेत में क्या बोना चाहिए, कहीं चर्चा होती थी कि पानी बहुत बरस गया, दो-चार दिन ठहर कर बोना चाहिए। गिरधारी ये बातें सुनता और जलहीन मछली की तरह तड़पता था।

(5)

एक दिन सन्ध्या समय गिरधारी खड़ा अपने बैलों को खुजला रहा था कि मंगलसिंह आये और इधर-उधर की बातें करके बोले—गोईं को बाँधकर कब तक खिलाओगे? निकाल क्यों नहीं देते? गिरधारी ने मलिन-भाव से कहा–हाँ, कोई गाहक आवे तो निकाल दूँ।

मंगलसिंह—एक गाहक तो हमीं हैं, हमीं को दे दो।

गिरधारी अभी कुछ उत्तर न देने पाया था कि तुलसी बनिया और गरजकर बोला—गिरधर, तुम्हें रुपये देने हैं कि नहीं वैसा कहो। तीन महीने से हीला-हवाला करते चले आते हो। अब कौन खेती करते हो कि तुम्हारी फसल को अगोरे बैठे रहें।

गिरधारी ने दीनता से कहा—साह, जैसे इतने दिनों माने हो आज और मान जाओ। कल तुम्हारी एक-एक कौड़ी चुका दूँगा।

मंगल और तुलसी ने इशारे से बातें कीं और तुलसी भुनभुनाता हुआ चला गया। तब गिरधारी मंगलसिंह से बोला—तुम इन्हें ले लो तो घर के घर ही में रह जायँ। कभी-कभी आँख से देख तो लिया करूँगा।

मंगल—मुझे अभी तो ऐसा कोई काम नहीं, लेकिन घर पर सलाह करूँगा।

गिरधारी—मुझे तुलसी के रुपये देने हैं, नहीं तो खिलाने को तो भूसा है।

मंगल—यह बड़ा बदमाश है, कहीं नालिश न कर दे।

सरल हृदय गिरधारी धमकी में आ गया। कार्य-कुशल मंगलसिंह को सस्ता सौदा करने का यह अच्छा सुअवसर मिला। ४० रु० की जोड़ी ६० रु० में ठीक कर ली।

गिरधारी ने अब बैलों को न जाने किस आशा से बाँध कर खिलाया था। आज आशा का वह कल्पित सूत्र भी टूट गया। मंगलसिंह गिरधारी की खाट पर बैठे रुपये गिन रहे थे और गिरधारी बैलों के पास विषादमय नेत्रों से उनके मुँह की ओर ताक रहा था। आह! यह मेरे खेतों के कमाने वाले, मेरे जीवन के आधार, मेरे अन्नदाता, मेरी मान-मर्यादा की रक्षा करने वाले, जिनके लिए पहर रात से उठकर छाँटी काटता था, जिनके खली-दाने की चिन्ता अपने खाने से ज्यादा रहती थी, जिनके लिए सारा घर दिनभर हरियाली उखाड़ा करता था। ये मेरी आशा की दो आँखें, मेरे इरादे के दो तारे, मेरे अच्छे दिनों के दो चिह्न, मेरे दो हाथ, अब मुझसे विदा हो रहे हैं।

जब मंगलसिंह ने रुपये गिनकर रख दिये और बैलों को ले चले तब गिरधारी उनके कंधों पर सिर रखकर खूब फूट-फूट कर रोया। जैसे कन्या मायके से विदा होते समय माँ-बाप के पैरों को नहीं छोड़ती, उसी तरह गिरधारी इन बैलों को न छोड़ता था। सुभागी भी दालान में खड़ी रो रही थी और छोटा लड़का मंगलसिंह को एक बाँस की छड़ी से मार रहा था।

रात को गिरधारी ने कुछ नहीं खाया। चारपाई पर पड़ा रहा! प्रातःकाल सुभागी चिलम भरकर ले गयी तो वह चारपाई पर न था। उसने समझा कहीं गये होंगे। लेकिन जब दो-तीन घड़ी दिन चढ़ आया और वह न लौटा तो उसने रोना-धोना शुरू किया। गाँव के लोग जमा हो गये, चारों ओर खोज होने लगी, पर गिरधारी का पता न चला।

(6)

संध्या हो गयी। अँधेरा छा रहा था। सुभागी ने दिया जलाकर गिरधारी के सिरहाने रख दिया और बैठी द्वार की ओर ताक रही थी कि सहसा उसे पैरों की आहट मालूम हुई। सुभागी का हृदय धड़क उठा। वह दौड़कर बाहर आयी और इधर-उधर ताकने लगी। उसने देखा कि गिरधारी बैलों की नाँद के पास सिर झुकाये खड़ा है।

सुभागी बोल उठी—घर जाओ, वहाँ खड़े क्या कर रहे हो, आज सारे दिन कहाँ रहे? यह कहते हुए वह गिरधारी की ओर चली। गिरधारी ने कुछ उत्तर न दिया। वह पीछे हटने लगा और थोड़ी दूर जाकर गायब हो गया। सुभागी चिल्लायी और मूर्च्छित होकर गिर पड़ी।

दूसरे दिन कालिकादीन हल लेकर अपने खेत पर पहुँचे, अभी कुछ अँधेरा था। बैलों को हल में लगा रहे थे कि यकायक उन्होंने देखा कि गिरधारी खेत की मेड़ पर खड़ा है, वही मिर्जई, वही पगड़ी, वही सोंटा।

कालिकादीन ने कहा—अरे गिरधारी! मरदे आदमी, तुम यहाँ खड़े हो और बेचारी सुभागी हैरान हो रही है। कहाँ से आ रहे हो? यह कहते हुए बैलों को छोड़कर गिरधारी की ओर चले, गिरधारी पीछे हटने लगा और पीछे वाले कुएँ में कूद पड़ा। कालिकादीन ने चीख मारी और हल-बैल वहीं छोड़ कर भागा। सारे गाँव में शोर मच गया और लोग नाना प्रकार की कल्पनाएँ करने लगे। कालिकादीन को गिरधारीवाले खेतों में जाने की हिम्मत न पड़ी।

गिरधारी को गायब हुए 6 महीने बीत चुके हैं। उसका बड़ा लड़का अब एक ईंट के भट्ठे पर काम करता है और 20 रु0 महीने घर आता है। अब वह कमीज और अंग्रेजी जूता पहनता है; घर में दोनों जून तरकारी पकती है और जौ के बदले गेहूँ खाया जाता है; लेकिन गाँव में उसका कुछ भी आदर नहीं। यह अब मजूर है। सुभागी अब पराये गाँव में आये हुए कुत्ते की भाँति दुबकती फिरती है। वह अब पंचायत में नहीं बैठती। वह अब मजूर की माँ है। कालिकादीन ने गिरधारी के खेतों से इस्तीफा दे दिया है, क्योंकि गिरधारी अभी तक अपने खेतों के चारों तरफ मँडराया करता है। अँधेरा होते ही वह मेड़ पर आकर बैठ जाता है और कभी-कभी रात को उधर से उसके रोने की आवाज सुनायी देती है। वह किसी से बोलता नहीं, किसी को छेड़ता नहीं। उसे केवल अपने खेतों को देख कर संतोष होता है। दिया जलने के बाद उधर का रास्ता बंद हो जाता है।

लाला ओंकारनाथ बहुत चाहते हैं कि ये खेत उठ जायँ, लेकिन गाँव के लोग अब उन खेतों का नाम लेते डरते हैं।

अभ्यास प्रश्न

1. कहानी-कला की दृष्टि से 'बलिदान' कहानी की समीक्षा कीजिए।
2. प्रेमचन्द को एक सफल कहानी-लेखक क्यों कहा जाता है? अपने मत को उपयुक्त उदाहरणों से पुष्ट कीजिए।
3. श्रेष्ठ कहानी की विशेषताएँ बताते हुए 'बलिदान' का मूल्यांकन कीजिए।
4. 'बलिदान' कहानी की विशिष्टताओं का विवेचनात्मक परिचय दीजिए।
5. 'बलिदान' कहानी के प्रमुख पात्र का जीवन-चित्रण कीजिए।
6. ''सोद्देश्यता कहानी का सार-तत्त्व है'' उक्ति के प्रकाश में 'बलिदान' कहानी का विवेचन कीजिए।
7. कथावस्तु के संगठन की दृष्टि से इस कहानी की समीक्षा कीजिए।
8. 'बलिदान' कहानी के आधार पर प्रेमचन्द की भाषा-शैली पर एक लेख लिखिए।
9. 'बलिदान' कहानी में चित्रित 'गिरधारी' का चरित्र भारतीय नवयुवकों के लिए क्या प्रेरणा प्रदान करता है? स्पष्ट कीजिए।
10. 'बलिदान' कहानी का उद्देश्य क्या है? कहानीकार को इसमें कहाँ तक सफलता मिली है?
11. 'बलिदान' कहानी का कथासार लिखिए।
12. 'बलिदान' कहानी के उद्देश्य पर प्रकाश डालिए।
13. 'बलिदान' कहानी के आधार पर उसके नायक की चारित्रिक विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
14. कहानी तत्त्वों के आधार पर 'बलिदान' कहानी की विवेचना कीजिए।

●●●

2 जयशंकर प्रसाद

➥ व्यक्तित्व

हिन्दी में छायावादी काव्य के प्रवर्तक जयशंकर प्रसाद का जन्म 1889 ई0 में वाराणसी में हुआ। बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न जयशंकर प्रसाद ने 'सुँघनी साहु' नामक प्रसिद्ध एवं वैभवसम्पन्न एक ऐसे परिवार में जन्म लिया जिसमें विद्वानों एवं कलाकारों को समुचित सम्मान दिया जाता था। उनके घर में शिव की उपासना की जाती थी। पारिवारिक विवशताओं के कारण कक्षा आठ तक ही वे स्कूली शिक्षा प्राप्त कर सके। आगे चलकर स्वाध्यायी प्रसाद ने घर पर ही संस्कृत के गहन अनुशीलन के अतिरिक्त हिन्दी, उर्दू, बंगला आदि का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त किया। पारिवारिक एवं आर्थिक संकटों में ग्रस्त साहसी जयशंकर प्रसाद अनवरत रूप से साहित्य-सर्जना में रत रहे। उनकी गणना मूर्धन्य साहित्यकारों में की जाती है। वे शीर्षस्थ 'कवि' होने के अतिरिक्त सुप्रसिद्ध नाटककार, कहानीकार, उपन्यासकार तथा निबन्ध-लेखक भी थे। वस्तुतः जयशंकर प्रसाद ने स्वानुभूति एवं गहन चिन्तन को साहित्य की विविध विधाओं के माध्यम से प्रस्तुत किया तथा विविध कला-कृतियों की रत्न-राशि से हिन्दी-भाषा एवं साहित्य के भण्डार को समृद्ध एवं समुन्नत बनाया। इनकी मृत्यु 1937 ई0 में हुई।

➥ कृतित्व

जयशंकर प्रसाद के पाँच कहानी-संग्रह हैं—**छाया, प्रतिध्वनि, आकाशदीप, आँधी** और **इन्द्रजाल**। आपने **कंकाल, तितली** तथा **इरावती** (अपूर्ण) उपन्यास भी लिखे हैं। **राज्यश्री, अजातशत्रु, स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी** आदि आपकी प्रसिद्ध **नाट्य-कृतियाँ** हैं। **'कामायनी'** आपका विश्वप्रसिद्ध महाकाव्य है। स्फुट काव्य तथा निबन्ध के क्षेत्र में भी आपका योगदान अविस्मरणीय है।

➥ कथा-शिल्प एवं भाषा-शैली

प्रसाद की कहानियों की सांस्कृतिक चेतना तथा उनके मनोवैज्ञानिक एवं भावात्मक चित्रण पाठक के मन पर गहरी छाप छोड़ते हैं। उनकी कहानी-रचना का धरातल साहित्यिक एवं कलात्मक है। उनकी कहानियाँ मानवता की उद्‌बोधक हैं। छायावादी कवि होने के कारण उनकी अधिकतर कहानियों में गहरी भावमयता और सूक्ष्मता की विशिष्टता मिलेगी। नाटकीय प्रतिभा एवं भावुक हृदय के अपूर्व संगम से उनकी अनेक कहानियाँ विशेष प्रभावशाली हो गयी हैं। आधार ऐतिहासिक हो अथवा काल्पनिक—काव्यतत्त्व उनकी अधिकांश कहानियों में समाहित रहता है। वस्तुतः हिन्दी-कहानी के विकास को नवीन दिशा देने में जयशंकर प्रसाद का अपूर्व योग है।

प्रसाद के कथानक आद्यन्त प्रवाहपूर्ण एवं चित्ताकर्षक है। कथावस्तु में सांस्कृतिक चेतना, प्रेम, कर्त्तव्य-निष्ठा, चरित्रगत सौन्दर्य आदि तत्त्व उभर कर आये हैं। प्रकृति के काव्यात्मक चित्र भी कथा-वस्तु के सौन्दर्य को निखारने में सफल हुए हैं। उनकी कहानियों में विविध प्रकार के पात्रों की सृष्टि हुई है। उन्होंने चरित्र-चित्रण में मानवीय गरिमा को महत्त्व दिया है तथा पात्रों के व्यक्तित्व को मार्मिकता से उभारा है। पात्रों की भावुकता उनको सक्रिय बनाती है तथा मानसिक संघर्षों में विवेक ऊपर उठकर कर्त्तव्य का मार्ग निर्धारित करता है। उनके कथोपकथन मार्मिक, सजीव एवं प्रभावशाली हैं। वे कहानी को रोचक बनाते हुए उसके स्वाभाविक विकास में योग देते हैं। उनकी कहानियों में एक काव्यात्मक वातावरण सर्वत्र छाया रहता है। उनकी प्रसिद्ध कहानियों के नाम हैं—**ग्राम, आकाशदीप, इन्द्रजाल, सलीम, आँधी** आदि।

प्रसाद की कहानियों की भाषा परिष्कृत, कलात्मक एवं संस्कृतनिष्ठ है तथा शैली ललित, नाटकीय एवं काव्यमयी है। स्थिति एवं पात्रों की मनोदशा के कलापूर्ण चित्रण तथा कथावस्तु का सौन्दर्य उभारने में उपयुक्त एवं कवित्वपूर्ण वातावरण की योजना प्रसाद जी की कहानी-कला का निजी वैशिष्ट्य है।

प्रसाद जी का 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' की प्रतिष्ठा करनेवाला जीवन-दर्शन उनकी कहानियों के उद्देश्य को निर्धारित एवं प्रभावित करता रहता है।

●●●

आकाशदीप

(एक)

"बंदी!"

"क्या है? सोने दो।"

"मुक्त होना चाहते हो?"

"अभी नहीं, निद्रा खुलने पर, चुप रहो।"

"फिर अवसर न मिलेगा।"

"बड़ा शीत है, कहीं से एक कंबल डालकर कोई शीत से मुक्त करता।"

"आँधी की सम्भावना है। यही अवसर है। आज मेरे बंधन शिथिल हैं।"

"तो क्या तुम भी बंदी हो?"

"हाँ, धीरे बोलो, इस नाव पर केवल दस नाविक और प्रहरी हैं।"

"शस्त्र मिलेगा?"

"मिल जायेगा। पोत से संबद्ध रज्जु काट सकोगे?"

"हाँ।"

समुद्र में हिलोरें उठने लगीं। दोनों बंदी आपस में टकराने लगे। पहले बंदी ने अपने को स्वतंत्र कर लिया। दूसरे का बंधन खोलने का प्रयत्न करने लगा। लहरों के धक्के एक-दूसरे को स्पर्श से पुलकित कर रहे थे। मुक्ति की आशा-स्नेह का असंभावित आलिंगन। दोनों ही अंधकार में मुक्त हो गये। दूसरे बंदी ने हर्षातिरेक से उसको गले से लगा लिया। सहसा उस बंदी ने कहा—"यह क्या? तुम स्त्री हो?"

"क्या स्त्री होना कोई पाप है?"—अपने को अलग करते हुए स्त्री ने कहा।

"शस्त्र कहाँ है—तुम्हारा नाम?"

"चम्पा।"

तारक-खचित नील अंबर और नील समुद्र के अवकाश में पवन ऊधम मचा रहा था। अंधकार से मिलकर पवन दुष्ट हो रहा था। समुद्र में आंदोलन था। नौका लहरों में विकल थी। स्त्री सतर्कता से लुढ़कने लगी। एक मतवाले नाविक के शरीर से टकराती हुई सावधानी से उसका कृपाण निकालकर, फिर लुढ़कते हुए, बंदी के समीप पहुँच गई। सहसा पोत से पथ-प्रदर्शक ने चिल्लाकर कहा—"आँधी!"

आपत्तिसूचक तूर्य बजने लगा। सब सावधान होने लगे। बंदी युवक उसी तरह पड़ा रहा। किसी ने रस्सी पकड़ी, कोई पाल खोल रहा था। पर युवक बंदी लुढ़ककर उस रज्जु के पास पहुँचा, जो पोत से संलग्न थी। तारे ढँक गये। तरंगें उद्वेलित हुईं, समुद्र गरजने लगा। भीषण आँधी पिशाचिनी के समान नाव को अपने हाथों में लेकर कंदुक-क्रीड़ा और अट्टहास करने लगी।

एक झटके के साथ ही नाव स्वतंत्र थी। उस संकट में भी दोनों बंदी खिलखिलाकर हँस पड़े। आँधी के हाहाकार में उसे कोई न सुन सका।

(दो)

अनंत जलनिधि में उषा का मधुर आलोक फूट उठा। सुनहली किरणों और लहरों की कोमल सृष्टि मुस्कराने लगी। सागर शांत था। नाविकों ने देखा, पोत का पता नहीं। बंदी मुक्त हैं।

नायक ने कहा—"बुद्धगुप्त! तुमको मुक्त किसने किया?"

कृपाण दिखाकर बुद्धगुप्त ने कहा—"इसने।"

नायक ने कहा—"तो तुम्हें फिर बंदी बनाऊँगा।"

"किसके लिए? पोताध्यक्ष मणिभद्र अतल जल में होगा—नायक! अब इस नौका का स्वामी मैं हूँ।"

"तुम? जलदस्यु बुद्धगुप्त? कदापि नहीं।"—चौंककर नायक ने कहा और अपना कृपाण टटोलने लगा। चम्पा ने इसके पहले उस पर अधिकार कर लिया था। वह क्रोध से उछल पड़ा।

"तो तुम द्वंद्वयुद्ध के लिए प्रस्तुत हो जाओ; जो विजयी होगा, वह स्वामी होगा।"—इतना कहकर बुद्धगुप्त ने कृपाण देने का संकेत किया। चम्पा ने कृपाण नायक के हाथ में दे दिया।

भीषण घात-प्रतिघात आरम्भ हुआ। दोनों कुशल, दोनों त्वरित गतिवाले थे। बड़ी निपुणता से बुद्धगुप्त ने अपना कृपाण दाँतों से पकड़कर अपने दोनों हाथ स्वतंत्र कर लिये। चम्पा भय और विस्मय से देखने लगी। नाविक प्रसन्न हो गये। परन्तु बुद्धगुप्त ने लाघव से नायक का कृपाण वाला हाथ पकड़ लिया और विकट हुँकार से दूसरा हाथ डाल, उसे गिरा दिया। दूसरे ही क्षण प्रभात की किरणों में बुद्धगुप्त का विजयी कृपाण उसके हाथों में चमक उठा। नायक की कातर आँखें प्राण-भिक्षा माँगने लगीं। बुद्धगुप्त ने कहा—"बोलो, अब स्वीकार है कि नहीं?"

"मैं अनुचर हूँ, वरुणदेव की शपथ। मैं विश्वासघात नहीं करूँगा।" बुद्धगुप्त ने उसे छोड़ दिया।

चम्पा ने युवक जलदस्यु के समीप आकर उसके क्षतों को अपनी स्निग्ध दृष्टि और कोमल करों से वेदना-विहीन कर दिया। बुद्धगुप्त के सुगठित शरीर पर रक्त-बिन्दु विजय-तिलक कर रहे थे।

विश्राम लेकर बुद्धगुप्त ने पूछा—"हम लोग कहाँ होंगे?"

"बालीद्वीप से बहुत दूर, सम्भवतः एक नवीन द्वीप के पास, जिसमें अभी हम लोगों का बहुत कम आना-जाना होता है। सिंहल के वणिकों का वहाँ प्राधान्य है।"

"कितने दिनों में हम लोग वहाँ पहुँचेंगे?"

"अनुकूल पवन मिलने पर दो दिन में। तब तक के लिए खाद्य का अभाव न होगा।"

सहसा नायक ने नाविकों को डाँड़ लगाने की आज्ञा दी और स्वयं पतवार पकड़कर बैठ गया। बुद्धगुप्त के पूछने पर उसने कहा—"यहाँ एक जलमग्न शैल-खण्ड है। सावधान न रहने से नाव के टकराने का भय है।"

(तीन)

"तुम्हें इन लोगों ने बंदी क्यों बनाया?"

"वणिक मणिभद्र की पाप-वासना ने।"

"तुम्हारा घर कहाँ है?"

"जाह्नवी के तट पर। चम्पा-नगरी की एक क्षत्रिय बालिका हूँ। पिता इसी मणिभद्र के यहाँ प्रहरी का काम करते थे। माता का देहावसान हो जाने पर मैं भी पिता के साथ नाव पर ही रहने लगी। आठ बरस से समुद्र ही मेरा घर है। तुम्हारे आक्रमण के समय मेरे पिता ने ही सात दस्युओं को मारकर जल-समाधि ली। एक मास हुआ, मैं इस नील नभ के नीचे, नील जलनिधि के ऊपर, एक भयानक अनंतता में निस्सहाय हूँ–अनाथ हूँ। मणिभद्र ने मुझसे एक दिन घृणित प्रस्ताव किया। मैंने उसे गालियाँ सुनाईं। उसी दिन से बंदी बना दी गई।"—चम्पा रोष से जल रही थी।

"मैं भी ताम्रलिप्ति का एक क्षत्रिय हूँ, चम्पा! परन्तु दुर्भाग्य से जलदस्यु बनकर जीवन बिताता हूँ। अब तुम क्या करोगी?"

"मैं अपने अदृष्ट को अनिर्दिष्ट ही रहने दूँगी। वह जहाँ ले जाय।"—चम्पा की आँखें निस्सीम प्रदेश में निरुद्देश्य थीं। किसी आकांक्षा के लाल डोरे न थे। धवल अपांगों में बालकों के सदृश विश्वास था। हत्या-व्यवसायी दस्यु भी उसे देखकर काँप गया। उसके मन में एक संभ्रमपूर्ण श्रद्धा यौवन की पहली लहरों को जगाने लगी। समुद्र-वक्ष पर बिम्बमयी राग-रंजित संध्या थिरकने लगी। चंपा के असंयत कुंतल उसकी पीठ पर बिखरे थे। दुर्दान्त दस्यु ने देखा, अपनी महिमा में अलौकिक एक वरुण? बालिका! वह विस्मय से अपने हृदय को टटोलने लगा। उसे एक नयी वस्तु का पता चला। वह थी कोमलता।

उसी समय नायक ने कहा—"हम लोग द्वीप के पास पहुँच गये।"

बेला से नाव टकराई। चम्पा निर्भीकता से कूद पड़ी। माँझी भी उतरे। बुद्धगुप्त ने कहा—"जब इसका कोई नाम नहीं है, तो हम लोग इसे चम्पा-द्वीप कहेंगे।"

चम्पा हँस पड़ी।

(चार)

पाँच बरस बाद.....

शरद के धवल नक्षत्र नील गगन में झिलमिला रहे थे। चंद्र की उज्ज्वल विजय पर अंतरिक्ष में शरदलक्ष्मी ने आशीर्वाद के फूलों और खीलों को बिखेर दिया।

चंपा के एक उच्चसौध पर बैठी हुई तरुणी चंपा दीपक जला रही थी। बड़े यत्न से अभ्रक की मंजूषा में दीप धरकर उसने अपनी सुकुमार उँगलियों से डोरी खींची। वह दीपाधार ऊपर चढ़ने लगा। भोली-भोली आँखें उसे ऊपर चढ़ते बड़े हर्ष से देख रही थीं। डोरी धीरे-धीरे खींची गई। चंपा की कामना थी कि उसका आकाश-दीप नक्षत्रों से हिलमिल जाय; किन्तु वैसा होना असम्भव था। उसने आशा-भरी आँखें फेर लीं।

सामने जल-राशि का रजत शृंगार था। वरुण बालिकाओं के लिए लहरें हीरे और नीलम की क्रीड़ा शैल-मालाएँ बना रही थीं—और वे मायाविनी छलनाएँ, अपनी हँसी का कलनाद छोड़कर छिप जाती थीं। दूर-दूर से धीवरों का वंशी-झनकार उनके संगीत-सा मुखरित होता था। चंपा ने देखा कि तरल संकुल जल-राशि में उसके कंडील का प्रतिबिम्ब अस्त-व्यस्त था। वह अपनी पूर्णता के लिए सैकड़ों चक्कर काटता था। वह अनमनी होकर उठ खड़ी हुई। किसी को पास न देखकर पुकारा—"जया!"

एक श्यामा युवती सामने आकर खड़ी हुई। वह जंगली थी। नील नभ-मण्डल से मुख में शुद्ध नक्षत्रों की पंक्ति के समान उसके दाँत हँसते ही रहते। वह चंपा को रानी कहती; बुद्धगुप्त की आज्ञा थी।

"महानाविक कब तक आवेंगे, बाहर पूछो तो।" चंपा ने कहा। जया चली गई।

दूरागत पवन चंपा के अंचल में विश्राम लेना चाहता था। उसके हृदय में गुदगुदी हो रही थी। आज न जाने क्यों वह बेसुध थी। एक दीर्घकाय दृढ़ पुरुष ने उसकी पीठ पर हाथ रख चमत्कृत कर दिया। उसने फिरकर कहा—"बुद्धगुप्त!"

"बावली हो क्या? यहाँ बैठी हुई अभी तक दीप जला रही हो, तुम्हें यह काम करना है?"

"क्षीरनिराधिशायी अनंत की प्रसन्नता के लिए क्या दासियों से आकाशदीप जलवाऊँ?"

"हँसी आती है। तुम किसको दीप जलाकर पथ दिखलाना चाहती हो? उसको, जिसको तुमने भगवान् मान लिया है?"

"हाँ, वह कभी भटकते हैं, भूलते हैं; नहीं तो, बुद्धगुप्त को इतना ऐश्वर्य क्यों देते?"

"तो बुरा क्या हुआ, इस द्वीप की अधीश्वरी चंपारानी!"

"मुझे इस बंदीगृह से मुक्त करो। अब तो बाली, जावा और सुमात्रा का वाणिज्य केवल तुम्हारे ही अधिकार में है महानाविक! परन्तु मुझे उन दिनों की स्मृति सुहावनी लगती है, जब तुम्हारे पास एक ही नाव थी और चम्पा के उपकूल में पण्य लादकर हम लोग सुखी जीवन बिताते थे—इस जल में अगणित बार हम लोगों की तरी आलोकमय प्रभात में तारिकाओं की मधुर ज्योति में थिरकती थी। बुद्धगुप्त! उस विजन अनंत में जब माँझी सो जाते थे, दीपक बुझ जाते थे, हम-तुम परिश्रम से थककर पालों में शरीर लपेटकर एक-दूसरे का मुँह क्यों देखते थे? वह नक्षत्रों की मधुर छाया—"

"तो चंपा! अब उससे भी अच्छे ढंग से हम लोग विचर सकते हैं। तुम मेरी प्राण-दात्री हो, मेरी सर्वस्व हो।"

"नहीं-नहीं, तुमने दस्युवृत्ति छोड़ दी परन्तु हृदय वैसा ही अकरुण, सतृष्ण और ज्वलनशील है। तुम भगवान् के नाम पर हँसी उड़ाते हो। मेरे आकाश-दीप पर व्यंग्य कर रहे हो। नाविक! उस प्रचण्ड आँधी में प्रकाश की एक-एक किरण के लिए हम लोग कितने व्याकुल थे। मुझे स्मरण है, जब मैं छोटी थी, मेरे पिता नौकरी पर समुद्र में जाते थे—मेरी माता, मिट्टी का दीपक बाँस की पिटारी में भागीरथी के तट पर बाँस के साथ ऊँचे टाँग देती थी। उस समय वह प्रार्थना करती—'भगवान्! मेरे पथ-भ्रष्ट नाविक को अंधकार में ठीक पथ पर ले चलना।' और जब मेरे पिता बरसों बाद लौटते तो कहते—'साध्वी! तेरी प्रार्थना से भगवान् ने भयानक संकटों में मेरी रक्षा की है।' वह गदगद् हो जाती। मेरी माँ? आह नाविक! यह उसी की

पुण्यस्मृति है। मेरे पिता, वीर पिता की मृत्यु के निष्ठुर कारण, जल-दस्यु! हट जाओ।''—सहसा चंपा का मुख क्रोध से भीषण होकर रंग बदलने लगा। महानाविक ने कभी यह रूप न देखा था। वह ठठाकर हँस पड़ा।

''यह क्या, चंपा? तुम अस्वस्थ हो जाओगी, सो रहो।''—कहता हुआ चला गया। चंपा मुट्ठी बाँधे उन्मादिनी-सी घूमती रही।

(पाँच)

निर्जन समुद्र के उपकूल में वेला में टकराकर लहरें बिखर जाती थीं। पश्चिम का पथिक थक गया था। उसका मुख पीला पड़ गया। अपनी शांत-गम्भीर हलचल में जलनिधि विचार में निमग्न था। वह जैसे प्रकाश की उन्मलिन किरणों से विरक्त था।

चंपा और जया धीरे-धीरे उस तट पर आकर खड़ी हो गईं। तरंग से उठते हुए पवन ने उनके वसन को अस्त-व्यस्त कर दिया। जया के संकेत से एक छोटी-सी नौका आयी। दोनों के उस पर बैठते ही नाविक उतर गया। जया नाव खेने लगी। चंपा मुग्ध-सी समुद्र के उदास वातावरण में अपने को मिश्रित कर देना चाहती थी।

''इतना जल! इतनी शीतलता! हृदय की प्यास न बुझी। पी सकूँगी? नहीं! तो जैसे वेला में चोट खाकर सिंधु चिल्ला उठता है, उसी के समान रोदन करूँ? या जलते हुए स्वर्ण-गोलक सदृश अनंत जल में डूबकर बुझ जाऊँ?''—चंपा के देखते-देखते पीड़ा और ज्वलन से आरक्त बिंब धीरे-धीरे सिंधु में चौथाई-आधा, फिर सम्पूर्ण विलीन हो गया। एक दीर्घ निःश्वास लेकर चंपा ने मुँह फेर लिया। देखा, तो महानाविक का बजरा उसके पास है। बुद्धगुप्त ने झुककर हाथ बढ़ाया। चंपा उसके सहारे बजरे पर चढ़ गई। दोनों पास-पास बैठ गये।

''इतनी छोटी नाव पर इधर घूमना ठीक नहीं। पास ही वह जलमग्न शैलखण्ड है। कहीं नाव टकरा जाती या ऊपर चढ़ जाती चंपा तो?''

''अच्छा होता, बुद्धगुप्त! जल में बंदी होना कठोर प्राचीरों से तो अच्छा है।''

''आह चंपा, तुम कितनी निर्दय हो! बुद्धगुप्त को आज्ञा देकर देखो तो, वह क्या नहीं कर सकता। जो तुम्हारे लिये नये द्वीप की सृष्टि कर सकता है, नयी प्रजा खोज सकता है, नये राज्य खोज सकता है, उसकी परीक्षा लेकर देखो तो.....। कहो, चंपा! वह कृपाण से अपना हृदय-पिंड निकाल अपने हाथों अतल जल में विसर्जन कर दे।'' महानाविक जिसके नाम से बाली, जावा और चंपा का आकाश गूँजता था, पवन थर्राता था, घुटनों के बल चंपा के सामने छलछलाई आँखों से बैठा था।

सामने शैलमाला की चोटी पर, हरियाली में विस्तृत जल-देश में, नील पिंगल संध्या, प्रकृति की सहृदय कल्पना, विश्राम की शीतल छाया स्वप्नलोक का सृजन करने लगी। उस मोहिनी के रहस्यपूर्ण नीलजाल का कुहक स्फुट हो उठा। जैसे मदिरा से सारा अंतरिक्ष सिक्त हो गया। सृष्टि नील कमलों में भर उठी। उस सौरभ से पागल चंपा ने बुद्धगुप्त के दोनों हाथ पकड़ लिये। वहाँ एक आलिंगन हुआ, जैसे क्षितिज में आकाश और सिंधु का किन्तु उस परिरम्भ में सहसा चैतन्य होकर चंपा ने अपनी कंचुकी से एक कृपाण निकाल लिया।

''बुद्धगुप्त! आज मैं अपने प्रतिशोध का कृपाण अतल जल में डुबा देती हूँ। हृदय ने छल किया, बार-बार धोखा दिया।''—चमककर वह कृपाण समुद्र का हृदय बेधता हुआ विलीन हो गया।

''तो आज से मैं विश्वास करूँ, क्षमा कर दिया गया?''—आश्चर्यकंपित कंठ से महानाविक ने पूछा।

''विश्वास? कदापि नहीं, बुद्धगुप्त! जब मैं अपने हृदय पर विश्वास नहीं कर सकी, उसी ने धोखा दिया, तब मैं कैसे कहूँ? मैं तुम्हें घृणा करती हूँ, फिर भी तुम्हारे लिये मर सकती हूँ। अँधेर है जलदस्यु। तुम्हें प्यार करती हूँ।''—चंपा रो पड़ी।

वह स्वप्नों की रंगीन संध्या, तम से अपनी आँखें बंद करने लगी थी। दीर्घ निःश्वास लेकर महानाविक ने कहा—''इस जीवन की पुण्यतम घड़ी की स्मृति से एक प्रकाश-गृह बनाऊँगा, चंपा! यहीं उस पहाड़ी पर। संभव है कि मेरे जीवन की धुँधली संध्या उससे आलोकपूर्ण हो जाय।''

(छह)

चंपा के दूसरे भाग में एक मनोरम शैलमाला थी। वह बहुत दूर तक सिंधु-जल में निमग्न थी। सागर का चंचल जल उस पर उछलता हुआ उसे छिपाये था। आज उसी शैलमाला पर चंपा के आदि-निवासियों का समारोह था। उन सबों ने चंपा

को वनदेवी-सा सजाया था। ताम्रलिप्ति के बहुत से सैनिक नाविकों की श्रेणी में वन-कुसुम-विभूषिता चंपा शिविका रूढ़ होकर जा रही थी।

शैल के एक ऊँचे शिखर पर चंपा के नाविकों को सावधान करने के लिए सुदृढ़ दीप-स्तंभ बनवाया गया था। आज उसी का महोत्सव है। बुद्धगुप्त स्तंभ के द्वार पर खड़ा था। शिविका से सहायता देकर चंपा को उसने उतारा। दोनों ने भीतर पदार्पण किया था कि बाँसुरी और ढोल बजने लगे। पंक्तियों में कुसुम-भूषण से सजी वन-बालाएँ फूल उछालती हुई नाचने लगीं।

दीप-स्तंभ की ऊपरी खिड़की से यह देखती हुई चंपा ने जया से पूछा—"यह क्या है जया? इतनी बालिकाएँ कहाँ से बटोर लायी?"

"आज रानी का ब्याह है न?"—कहकर जया ने हँस दिया।

बुद्धगुप्त विस्तृत जलनिधि की ओर देख रहा था। उसे झकझोर कर चंपा ने पूछा—"क्या यह सच है?"

"यदि तुम्हारी इच्छा हो, तो यह सच भी हो सकता है, चंपा! कितने वर्षों से मैं ज्वालामुखी को अपनी छाती में दबाये हूँ।"

"चुप रहो, महानाविक! क्या मुझे निस्सहाय और कंगाल जानकर तुमने आज सब प्रतिशोध लेना चाहा?"

"मैं तुम्हारे पिता का घातक नहीं हूँ, चंपा! वह एक-दूसरे दस्यु के शस्त्र से मरे!"

"यदि मैं इसका विश्वास कर सकती! बुद्धगुप्त, वह दिन कितना सुन्दर होता, वह क्षण कितना स्पृहणीय! आह! तुम इस निष्ठुरता में भी कितने महान् होते!"

जया नीचे चली गई थी। स्तम्भ के संकीर्ण प्रकोष्ठ में बुद्धगुप्त और चंपा एकांत में एक-दूसरे के सामने बैठे थे।

बुद्धगुप्त ने चंपा के पैर पकड़ लिये। उच्छ्वसित शब्दों में वह कहने लगा—"चंपा, हम लोग जन्मभूमि-भारतवर्ष से कितनी दूर इन निरीह प्राणियों में इंद्र और शची के समान पूजित हैं पर न जाने कौन अभिशाप हम लोगों को अभी तक अलग किये है। स्मरण होता है वह दार्शनिकों का देश! वह महिमा की प्रतिमा! मुझे वह स्मृति नित्य आकर्षित करती है; परन्तु मैं क्यों नहीं जाता? जानती हो, इतना महत्त्व प्राप्त करने पर भी मैं कंगाल हूँ! मेरा पत्थर-सा हृदय एक दिन सहसा तुम्हारे स्पर्श से चंद्रकांतमणि की तरह द्रवित हुआ।"

"चंपा! मैं ईश्वर को नहीं मानता, मैं पाप को नहीं मानता, मैं दया को नहीं समझ सकता, मैं उस लोक में विश्वास नहीं करता। पर मुझे अपने हृदय के एक दुर्बल अंश पर श्रद्धा हो चली है। तुम न जाने कैसे एक बहकी हुई तारिका के समान मेरे शून्य में उदित हो गई हो। आलोक की एक कोमल रेखा इस निविड़ तम में मुस्कराने लगी। पशु-बल और धन के उपासक के मन में किसी शांत और एकांत कामना की हँसी खिलखिलाने लगी; पर मैं न हँस सका।"

"चलोगी चंपा? पोतवाहिनी पर असंख्य धनराशि लादकर राजरानी-सी जन्मभूमि अंक में? आज हमारा परिणय हो, कल ही हम लोग भारत के लिए प्रस्थान करें। महानाविक बुद्धगुप्त की आज्ञा सिंधु लहरें मानती हैं। वे स्वयं उस पोत-पुंज को दक्षिण पवन के समान भारत में पहुँचा देगी। आह चंपा! चलो।"

चंपा ने उसके हाथ पकड़ लिये। किसी आकस्मिक झटके ने एक पल भर के लिए दोनों के अधरों को मिला दिया। सहसा चैतन्य होकर चंपा ने कहा—"बुद्धगुप्त! मेरे लिये सब भूमि मिट्टी है; सब जल तरल है; सब पवन शीतल है। कोई विशेष आकांक्षा हृदय में अग्नि के समान प्रज्वलित नहीं। सब मिलाकर मेरे लिए एक शून्य है। प्रिय नाविक! तुम स्वदेश लौट जाओ, विभवों का सुख भोगने के लिए, और मुझे, छोड़ दो इन निरीह भोले-भाले प्राणियों के दुःख की सहानुभूति और सेवा के लिए।"

"तब मैं अवश्य चला जाऊँगा, चंपा! यहाँ रहकर मैं अपने हृदय पर अधिकार रख सकूँ-इसमें सन्देह है। आह! इन लहरों में मेरा विनाश हो जाय।" महानाविक के उच्छ्वास में विकलता थी। फिर उसने पूछा—"तुम अकेली यहाँ क्या करोगी?"

"पहले विचार था कि कभी-कभी इस दीप-स्तंभ पर से आलोक जलाकर अपने पिता की समाधि का इस जल में अन्वेषण करूँगी। किन्तु देखती हूँ, मुझे भी इसी में जलना होगा, जैसे आकाश-दीप।"

(सात)

एक दिन स्वर्ण-रहस्य के प्रभात में चंपा ने अपने दीप-स्तम्भ पर से देखा—सामुद्रिक नावों की एक श्रेणी चंपा का उपकूल छोड़कर पश्चिम-उत्तर की ओर महा जलव्याल के समान संतरण कर रही है। उसकी आँखों से आँसू बहने लगे।

यह कितनी ही शताब्दियों पहले की कथा है। चंपा आजीवन उस दीप-स्तम्भ में आलोक जलाती ही रही। किन्तु उसके बाद भी बहुत दिन, दीप-निवासी, उस माया-ममता और स्नेह-सेवा की देवी की समाधि-सदृश पूजा करते थे।

एक दिन काल के कठोर हाथों ने उसे भी अपनी चंचलता से गिरा दिया।

अभ्यास प्रश्न

1. कहानी-कला की दृष्टि से 'आकाशदीप' कहानी का मूल्यांकन कीजिए।
2. भाषा-शैली की दृष्टि से 'आकाशदीप' कहानी की समीक्षा कीजिए।
3. श्रेष्ठ कहानी की विशेषताएँ बताते हुए 'आकाशदीप' कहानी का मूल्यांकन कीजिए।
4. 'आकाशदीप' कहानी के माध्यम से प्रसादजी ने कौन-सा आदर्श रखना चाहा है?
5. ''प्रसाद की नाटकीय एवं कवित्वपूर्ण भाषा ने 'आकाशदीप' कहानी को अत्यन्त प्रभावपूर्ण बना दिया है।'' इस कथन की पुष्टि कीजिए।
6. चंपा ने बुद्धगुप्त के निवेदन को क्यों ठुकराया? क्या चम्पा के हृदय में बुद्धगुप्त के लिए कोई स्थान नहीं था? अपने विचार व्यक्त कीजिए।
7. 'आकाशदीप' कहानी के कथा-संगठन पर प्रकाश डालिए।
8. 'अन्तर्द्वन्द्व' शब्द का अर्थ स्पष्ट करते हुए चम्पा के अन्तर्द्वन्द्व का उल्लेख कीजिए।
9. 'आकाशदीप' कहानी के शीर्षक की सार्थकता बताइए।
10. 'आकाशदीप' कहानी के आधार पर लेखक का उद्देश्य स्पष्ट कीजिए।
11. 'आकाशदीप' कहानी के प्रमुख पात्र का चरित्र-चित्रण कीजिए।
12. 'आकाशदीप' कहानी में सजीव ऐतिहासिक वातावरण की सृष्टि किस प्रकार की गयी है?
13. सिद्ध कीजिए 'आकाशदीप' कहानी की सफलता उसमें निहित वैचारिक द्वन्द्व है।
14. 'आकाशदीप' कहानी की कथावस्तु का उल्लेख करते हुए उसके नामकरण की सार्थकता पर प्रकाश डालिए।
15. 'आकाशदीप' कहानी का कथासार अपने शब्दों में लिखिए।
16. कहानी तत्त्वों के आधार पर 'आकाशदीप' कहानी की समीक्षा कीजिए।
17. जयशंकर प्रसाद की संकलित कहानी के आधार पर 'चम्पा' का चरित्र-चित्रण कीजिए।
18. 'आकाशदीप' कहानी की कथावस्तु व शीर्षक की समीक्षा कीजिए।
19. 'आकाशदीप' कहानी की विषय-वस्तु संक्षेप में लिखिए।
20. 'आकाशदीप' कहानी के आधार पर उसके नायक की चारित्रिक विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
21. 'आकाशदीप' कहानी के मुख्य पात्र का चरित्र-चित्रण कीजिए।
22. 'आकाशदीप' कहानी के नायक का चरित्र-चित्रण कीजिए।
23. 'आकाशदीप' कहानी के नायक की चारित्रिक विशेषताएँ बताइए।
24. कहानी कला के तत्त्वों के आधार पर 'आकाशदीप' कहानी की समीक्षा कीजिए।

●●●

3 भगवतीचरण वर्मा

➥ व्यक्तित्व

भगवतीचरण वर्मा का जन्म 1903 ई0 में उन्नाव जिले के शफीपुर में हुआ था। आपने प्रयाग विश्वविद्यालय से बी0ए0, एल-एल0बी0 तक की शिक्षा प्राप्त की। वर्माजी ने प्राय: सभी विधाओं में साहित्य-सर्जना की है। हिन्दी साहित्य में आपका पदार्पण छायावाद की नवीन धारा के कवि के रूप में हुआ था तथा प्रगतिशील कवियों में आपने अपना विशिष्ट स्थान बनाया। वर्माजी एक सफल उपन्यासकार तो थे ही, उच्चकोटि के व्यंग्यात्मक कहानीकार के रूप में भी आप प्रतिष्ठित हुए। फिल्म तथा आकाशवाणी कार्यक्रमों में भी आपने नाम कमाया। 1981 ई0 में आपका देहावसान लखनऊ में हो गया।

➥ कृतित्व

वर्माजी के कहानी संग्रह हैं—**इन्स्टालमेण्ट, दो बाँके** तथा **राख और चिनगारी। 'मोर्चाबन्दी'** नाम से इनकी व्यंग्य कथाओं का संग्रह प्रकाशित हुआ है। आपके उपन्यास हैं—**पतन, चित्रलेखा, तीन वर्ष, टेढ़े-मेढ़े रास्ते, सामर्थ्य और सीमा-रेखा, सीधी-सच्ची बातें, सबहिं नचावत राम गुसाईं, प्रश्न और मारीचिका**। आपने कविताएँ, रेडियो-रूपक तथा नाटक भी लिखे हैं।

➥ कथा-शिल्प एवं भाषा-शैली

वर्माजी की गणना अपने युग के शीर्षस्थ कहानीकारों में की जाती है। आपकी कहानियों में कला की सजीवता पाठक को मुग्ध कर देती है। सरलता, स्पष्टता, सहजता एवं व्यंग्यात्मक अभिव्यंजना आपकी कहानियों की प्रमुख विशेषताएँ हैं।

आपकी कहानियों में अधिकतर सामाजिक परिवेशों तथा पारिवारिक प्रसंगों को कथानक के रूप में लिया गया है। कथानक लघु किन्तु कलापूर्ण एवं सव्यंग्य हैं। नगण्य एवं सामान्य घटनाओं का मार्मिक तथा चुटीला प्रस्तुतीकरण आपकी विशेषता है। शीर्षक आकर्षक एवं कुतूहलवर्धक होते हैं। वर्माजी ने मुख्यत: चरित्रप्रधान, समस्याप्रधान अथवा विचारप्रधान कहानियाँ लिखी हैं। कहानियों के पात्र समाज के विभिन्न वर्गों से चुने गये हैं। वर्गीय पात्रों के चरित्र-चित्रण में आपने मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाकर उन्हें सजीव बना दिया है। पात्रों के मनोगत भावों को स्पष्ट करने तथा उनकी मनोग्रन्थियों को खोलने में आपका कौशल देखते ही बनता है।

आपकी कहानियों में कथोपकथनों की योजना मनोरंजक ढंग से की गयी है। कथोपकथन संक्षिप्त एवं सार्थक हैं तथा पात्रों के मनोगत भावों को व्यक्त करने में समर्थ हैं। लेखक ने नाटकीयता का पुट देकर संवादों को अत्यन्त सजीव तथा वातावरणपरक बना दिया है।

'दो बाँके', 'मुगलों ने सल्तनत बख्श दी', 'प्रायश्चित', 'काश मैं कह सकता', 'विक्टोरिया क्रास', 'कायरता', 'वसीयत' आदि आपकी प्रसिद्ध कहानियाँ हैं।

आपकी भाषा-शैली सरल, सहज एवं व्यावहारिक है। शैली में व्यंग्य के साथ-साथ प्रवाह है तथा वह पात्रों के अनुकूल एवं परिस्थिति के अनुसार बदलती है। आपकी अधिकतर कहानियों में शिष्ट हास्य एवं परिमार्जित व्यंग्य पाठक को प्रभावित करते रहते हैं।

परिस्थिति एवं प्रसंग के उपयुक्त, रोचक एवं प्रभावशाली वातावरण चित्रित करने में वर्मा जी सिद्धहस्त थे। आपकी कहानियाँ जीवन की विकृतियों और विसंगतियों को पाठक के समक्ष न केवल उद्घाटित करती हैं, अपितु यथार्थ अनुभव के प्रति पाठक को संवेदनशील भी बनाती हैं।

●●●

प्रायश्चित

अगर कबरी बिल्ली घर भर में किसी से प्रेम करती थी, तो रामू की बहू से और अगर रामू की बहू घर भर में किसी से घृणा करती थी, तो कबरी बिल्ली से। रामू की बहू, दो महीने हुए मायके से प्रथम बार ससुराल आयी थी, पति की प्यारी और सास की दुलारी, चौदह वर्ष की बालिका। भण्डार-घर की चाभी उसकी करधनी में लटकने लगी, नौकरों पर उसका हुक्म चलने लगा, और रामू की बहू घर में सबकुछ। सास जी ने माला ली और पूजा-पाठ में मन लगाया।

लेकिन ठहरी चौदह वर्ष की बालिका, कभी भण्डार-घर खुला है, तो कभी भण्डार-घर में बैठे-बैठे सो गयी। कबरी बिल्ली को मौका मिला, घी-दूध पर अब वह जुट गयी। रामू की बहू की जान आफत में और कबरी बिल्ली के छक्के-पंजे। रामू की बहू हाँडी में घी रखते-रखते ऊँघ गयी और बचा हुआ घी कबरी के पेट में। रामू की बहू दूध ढँककर मिसरानी को जिन्स देने गयी और दूध नदारद। अगर यह बात यहीं तक रह जाती, तो भी बुरा न था, कबरी रामू की बहू से कुछ परच गयी थी कि रामू की बहू के लिए खाना-पीना दुश्वार। रामू की बहू के कमरे में रबड़ी से भरी कटोरी पहुँची और रामू जब आये तब कटोरी साफ चटी हुई। बाजार से मलाई आयी और जब तक रामू की बहू ने खाना लगाया मलाई गायब।

रामू की बहू ने तै कर लिया कि या तो वही घर में रहेगी या फिर कबरी बिल्ली ही। मोरचाबन्दी हो गयी और दोनों सतर्क। बिल्ली फँसाने का कठघरा आया, उसमें दूध, मलाई, चूहे और भी बिल्ली को स्वादिष्ट लगनेवाले विविध प्रकार के व्यंजन रखे गये, लेकिन बिल्ली ने उधर निगाह तक न डाली। इधर कबरी ने सरगर्मी दिखलायी। अभी तक तो वह रामू की बहू से डरती थी; पर अब वह साथ लग गयी, लेकिन इतने फासिले पर कि रामू की बहू उस पर हाथ न लगा सके।

कबरी के हौसले बढ़ जाने से रामू की बहू को घर में रहना मुश्किल हो गया। उसे मिलती थी सास की मीठी झिड़कियाँ और पतिदेव को मिलता था रूखा-सूखा भोजन।

एक दिन रामू की बहू ने रामू के लिए खीर बनायी। पिस्ता, बादाम, मखाने और तरह-तरह के मेवे दूध में औटाए गये, सोने का वर्क चिपकाया गया और खीर से भरकर कटोरा कमरे के एक ऐसे ऊँचे ताक पर रखा गया, जहाँ बिल्ली न पहुँच सके। रामू की बहू इसके बाद पान लगाने में लग गयी।

उधर बिल्ली कमरे में आयी, ताक के नीचे खड़े होकर उसने ऊपर कटोरे की ओर देखा, सूँघा, माल अच्छा है, ताक की ऊँचाई अन्दाजी और रामू की बहू पान लगा रही है। पान लगाकर रामू की बहू सास जी को पान देने चली गयी और कबरी ने छलाँग मारी, पंजा कटोरे में लगा और कटोरा झनझनाहट की आवाज के साथ फर्श पर।

आवाज रामू की बहू के कान में पहुँची, सास के सामने पान फेंककर वह दौड़ी, क्या देखती है कि फूल का कटोरा टुकड़े-टुकड़े, खीर फर्श पर बिल्ली डटकर खीर उड़ा रही है। रामू की बहू को देखते ही कबरी चम्पत।

रामू की बहू पर खून सवार हो गया, न रहे बाँस न बजे बाँसुरी, रामू की बहू ने कबरी की हत्या पर कमर कस ली। रात भर उसे नींद न आयी, किस दाँव से कबरी पर वार किया जाय कि फिर जिन्दा न बचे, यही पड़े-पड़े सोचती रही। सुबह हुई और वह देखती है कि कबरी देहरी पर बैठी बड़े प्रेम से उसे देख रही है।

रामू की बहू ने कुछ सोचा, इसके बाद मुस्कराती हुई वह उठी, कबरी रामू की बहू के उठते ही खिसक गयी। रामू की बहू एक कटोरा दूध कमरे के दरवाजे की देहरी पर रखकर चली गयी। हाथ में पाटा लेकर वह लौटी तो देखती है कि कबरी दूध पर जुटी हुई है। मौका हाथ में आ गया, सारा बल लगाकर पाटा उसने बिल्ली पर पटक दिया। कबरी न हिली न डुली, न चीखी न चिल्लाई, बस एकदम उलट गयी।

आवाज जो हुई तो महरी झाड़ू छोड़कर, मिसरानी रसोई छोड़कर और सास पूजा छोड़कर घटनास्थल पर उपस्थित हो गयीं। रामू की बहू सिर झुकाये हुए अपराधिनी की भाँति बातें सुन रही है।

महरी बोली—"अरे राम! बिल्ली तो मर गयी, माँ जी, बिल्ली की हत्या बहू से हो गयी, यह तो बुरा हुआ।"

मिसरानी बोली—"माँ जी, बिल्ली की हत्या और आदमी की हत्या बराबर है, हम तो रसोई न बनावेंगी, जब तक बहू के सिर हत्या रहेगी।"

सास जी बोलीं—"हाँ ठीक तो कहती हो, अब जब तक बहू के सिर से हत्या न उतर जाय, तब तक न कोई पानी पी सकता है न खाना खा सकता है। बहू, यह क्या कर डाला?"

महरी ने कहा—"फिर क्या हो, कहो तो पण्डित जी को बुलाए लाएँ।"

सास की जान में जान आयी—"अरे हाँ, जल्दी दौड़ के पण्डित जी को बुला ला।"

बिल्ली की हत्या की खबर बिजली की तरह पड़ोस में फैल गयी—पड़ोस की औरतों का रामू के घर में ताँता बँध गया। चारों तरफ से प्रश्नों की बौछार और रामू की बहू सिर झुकाये बैठी।

पण्डित परमसुख को जब यह खबर मिली, उस समय वे पूजा कर रहे थे। खबर पाते ही वे उठ पड़े—पण्डिताइन से मुस्कराते हुए बोले—"भोजन न बनाना, लाला घासीराम की पतोहू ने बिल्ली मार डाली, प्रायश्चित होगा, पकवानों पर हाथ लगेगा।"

पण्डित परमसुख चौबे छोटे-से, मोटे-से आदमी थे। लम्बाई चार फीट दस इंच और तोंद का घेरा अट्ठावन इंच। चेहरा गोल-मटोल, मूँछ बड़ी-बड़ी, रंग गोरा, चोटी कमर तक पहुँचती हुई।

कहा जाता है कि मथुरा में जब पंसेरी खुराकवाले पण्डितों को ढूँढ़ा जाता था, तो पण्डित परमसुख जी को उस लिस्ट में प्रथम स्थान दिया जाता था।

पण्डित परमसुख पहुँचे और कोरम पूरा हुआ। पंचायत बैठी—सास जी, मिसरानी, किसनू की माँ, छन्नू की दादी और पण्डित परमसुख! बाकी स्त्रियाँ बहू से सहानुभूति प्रकट कर रही थीं।

किसनू की माँ ने कहा—"पण्डित जी, बिल्ली की हत्या करने से कौन नरक मिलता है?"

पण्डित परमसुख ने पत्रा देखते हुए कहा, "बिल्ली की हत्या अकेले से तो नरक का नाम नहीं बतलाया जा सकता, वह महूरत जब मालूम हो, जब बिल्ली की हत्या हुई, तब नरक का पता लग सकता है।"

"यही कोई सात बजे सुबह"—मिसरानी जी ने कहा।

पण्डित परमसुख ने पत्रे के पन्ने उलटे, अक्षरों पर उँगलियाँ चलाईं, मत्थे पर हाथ लगाया और कुछ सोचा। चेहरे पर धुँधलापन आया, माथे पर बल पड़े, नाक कुछ सिकुड़ी और स्वर गम्भीर हो गया—'हरे कृष्ण! हरे कृष्ण! बड़ा बुरा हुआ, प्रातःकाल ब्रह्म-मुहूर्त में बिल्ली की हत्या! घोर कुम्भीपाक नरक का विधान है! रामू की माँ, यह तो बड़ा बुरा हुआ।'

रामू की माँ की आँखों में आँसू आ गये—"तो फिर पण्डित जी, अब क्या होगा, आप ही बतलाएँ!"

पण्डित परमसुख मुस्कराए—"रामू की माँ, चिन्ता की कौन-सी बात है, हम पुरोहित फिर कौन दिन के लिए हैं? शास्त्रों में प्रायश्चित का विधान है, सो प्रायश्चित से सबकुछ ठीक हो जाएगा।"

रामू की माँ ने कहा—"पण्डित जी, उसी लिये तो आपको बुलवाया था, अब आगे बतलाओ कि क्या किया जाय!"

"किया क्या जाय, यही एक सोने की बिल्ली बनवाकर बहू से दान करवा दी जाय। जब तक बिल्ली न दे दी जाएगी, तब तक तो घर अपवित्र रहेगा। बिल्ली दान देने के बाद इक्कीस दिन का पाठ हो जाय।"

छन्नू की दादी—"हाँ और क्या, पण्डित जी ठीक तो कहते हैं, बिल्ली अभी दान दे दी जाय और पाठ फिर हो जाय।"

रामू की माँ ने कहा—"तो पण्डित जी, कितने तोले की बिल्ली बनवाई जाय?"

पण्डित परमसुख मुस्कराये, अपनी तोंद पर हाथ फेरते हुए उन्होंने कहा—"बिल्ली कितने तोले की बनवायी जाय? अरे रामू की माँ, शास्त्रों में तो लिखा है कि बिल्ली के वजन-भर सोने की बिल्ली बनवायी जाय, लेकिन अब कलियुग आ गया है, धर्म-कर्म नाश हो गया है, श्रद्धा नहीं रही। सो रामू की माँ, बिल्ली के तौलभर की बिल्ली तो क्या बनेगी, क्योंकि बिल्ली बीस-इक्कीस सेर से कम की क्या होगी। हाँ, कम-से-कम इक्कीस तोले की बिल्ली बनवा के दान करवा दो, और आगे तो अपनी-अपनी श्रद्धा!"

रामू की माँ ने आँखें फाड़कर पण्डित परमसुख को देखा—"अरे बाप रे, इक्कीस तोला सोना! पण्डित जी यह तो बहुत है, तोलाभर की बिल्ली से काम न निकलेगा?"

पण्डित परमसुख हँस पड़े—"रामू की माँ! एक तोला सोने की बिल्ली! अरे रुपया का लोभ बहू से बढ़ गया? बहू के सिर बड़ा पाप है, इसमें इतना लोभ ठीक नहीं!"

मोल-तोल शुरू हुआ और मामला ग्यारह तोले की बिल्ली पर ठीक हो गया। इसके बाद पूजा-पाठ की बात आयी। पण्डित परमसुख ने कहा—"उसमें क्या मुश्किल है, हम लोग किस दिन के लिए हैं, रामू की माँ, मैं पाठ कर दिया करूँगा, पूजा की सामग्री आप हमारे घर भिजवा देना।"

"पूजा का सामान कितना लगेगा?"

'अरे, कम-से-कम सामान में हम पूजा कर देंगे, दान के लिए करीब दस मन गेहूँ, एक मन चावल, एक मन दाल, मनभर तिल, पाँच मन जौ और पाँच मन चना, चार पसेरी घी और मन भर नमक भी लगेगा। बस, इतने से काम चल जाएगा।"

"अरे बाप रे, इतना सामान! पण्डित जी इसमें तो सौ-डेढ़ सौ रुपया खर्च हो जाएगा"—रामू की माँ ने रुआँसी होकर कहा।

"फिर इससे कम में तो काम न चलेगा। बिल्ली की हत्या कितना बड़ा पाप है, रामू की माँ! खर्च को देखते वक्त पहले बहू के पाप को तो देख लो! यह तो प्रायश्चित में उसे वैसा खर्च भी करना पड़ता है। आप लोग कोई ऐसे-वैसे थोड़े हैं, अरे सौ-डेढ़ सौ रुपया आप लोगों के हाथ का मैल है।"

पण्डित परमसुख की बात से पंच प्रभावित हुए, किसनू की माँ ने कहा—"पण्डित जी ठीक तो कहते हैं, बिल्ली की हत्या कोई ऐसा-वैसा पाप तो है नहीं। बड़े पाप के लिए बड़ा खर्च भी चाहिए।"

छन्नू की दादी ने कहा—"और नहीं तो क्या, दान-पुन्न से ही पाप कटते हैं—दान-पुन्न में किफायत ठीक नहीं।"

मिसरानी ने कहा—"और फिर माँ जी आप लोग बड़े आदमी ठहरे। इतना खर्च कौन आप लोगों को अखरेगा।"

रामू की माँ ने अपने चारों ओर देखा—सभी पंच पण्डित जी के साथ। पण्डित परमसुख मुस्करा रहे थे। उन्होंने कहा—"रामू की माँ! एक तरफ तो बहू के लिए कुम्भीपाक नरक है और दूसरी तरफ तुम्हारे जिम्मे थोड़ा-सा खर्चा है। सो उससे मुँह न मोड़ो।"

एक ठण्डी साँस लेते हुए रामू की माँ ने कहा—"अब तो जो नाच नचाओगे नाचना ही पड़ेगा।"

पण्डित परमसुख जरा कुछ बिगड़कर बोले—"रामू की माँ! यह तो खुशी की बात है—अगर तुम्हें यह अखरता है तो न करो, मैं चला"—इतना कहकर पण्डित जी ने पोथी-पत्रा बटोरा।

"अरे पण्डित जी—रामू की माँ को कुछ नहीं अखरता—बेचारी को कितना दुःख है—बिगड़ो न!" मिसरानी, छन्नू की दादी और किसनू की माँ ने एक स्वर में कहा।

रामू की माँ ने पण्डित जी के पैर पकड़े—और पण्डित जी ने अब जमकर आसन जमाया।

"और क्या हो?"

"इक्कीस दिन के पाठ के इक्कीस रुपए और इक्कीस दिन तक दोनों बखत पाँच-पाँच ब्राह्मणों को भोजन करवाना पड़ेगा।" कुछ रुककर पण्डित परमसुख ने कहा—"सो इसकी चिंता न करो, मैं अकेले दोनों समय भोजन कर लूँगा और मेरे अकेले भोजन करने से पाँच ब्राह्मण के भोजन का फल मिल जाएगा।"

"यह तो पण्डित जी ठीक कहते हैं, पण्डित जी की तोंद तो देखो!" मिसरानी ने मुसकराते हुए पण्डित जी पर व्यंग्य किया।

"अच्छा तो फिर प्रायश्चित का प्रबन्ध करवाओ रामू की माँ, ग्यारह तोला सोना निकालो, मैं उसकी बिल्ली बनवा लाऊँ—दो घण्टे में मैं बनवाकर लौटूँगा, तब तक सब पूजा का प्रबन्ध कर रखो—और देखो पूजा के लिए..."

पण्डित जी की बात खतम भी न हुई थी कि महरी हाँफती हुई कमरे में घुस आयी और सब लोग चौंक उठे। रामू की माँ ने घबराकर कहा—"अरी क्या हुआ री?"

महरी ने लड़खड़ाते स्वर में कहा—"माँ जी, बिल्ली तो उठकर भाग गई।"

अभ्यास प्रश्न

1. 'प्रायश्चित' कहानी का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।
2. 'प्रायश्चित' कहानी के प्रमुख तत्त्वों के आधार पर विशेषताएँ लिखिए।
3. 'प्रायश्चित' कहानी में लेखक ने समाज की किस घातक मनोवृत्ति पर व्यंग्य किया गया है?
4. वातावरण एवं भाषा-शैली की दृष्टि से 'प्रायश्चित' कहानी की समीक्षा कीजिए।
5. सप्रमाण सिद्ध कीजिए कि 'प्रायश्चित' एक सफल कहानी है।
6. वर्माजी को मानव-समाज की गहरी परख है। इस कथन की व्याख्या 'प्रायश्चित' के पात्रों के आधार पर कीजिए।
7. ''जिज्ञासा की उत्तरोत्तर वृद्धि अच्छी कहानी की पहचान है।'' इस कथन के आधार पर 'प्रायश्चित' कहानी का मूल्यांकन कीजिए।
8. 'प्रायश्चित' कहानी के आधार पर पण्डित परमसुख का चरित्र-चित्रण कीजिए।
9. 'प्रायश्चित' कहानी में सामाजिक रूढ़ियों और धर्मान्धताओं पर प्रहार और व्यंग्य का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।
10. 'प्रायश्चित' कहानी जिज्ञासा-भाव से परिपूर्ण है—इस कथन का औचित्य सिद्ध कीजिए।
11. श्रेष्ठ कहानी की विशेषताएँ बताते हुए 'प्रायश्चित' कहानी का मूल्यांकन कीजिए।
12. सिद्ध कीजिए कि 'प्रायश्चित' कहानी की सफलता उसमें निहित घटनाओं पर आधारित है।
13. कहानी-कला की दृष्टि से 'प्रायश्चित' कहानी की समीक्षा कीजिए।
14. 'प्रायश्चित' कहानी की कहानी तत्त्वों के आधार पर समीक्षा कीजिए।
15. 'प्रायश्चित' कहानी के उद्देश्य पर प्रकाश डालिए।
16. भगवतीचरण वर्मा की संकलित कहानी की कथावस्तु की समीक्षा कीजिए।
17. 'प्रायश्चित' कहानी का कथानक अपनी भाषा में लिखिए।
18. 'प्रायश्चित' कहानी के आधार पर पण्डित परमसुख का चित्रांकन कीजिए।
19. 'प्रायश्चित' कहानी के प्रमुख पात्र का चरित्र-चित्रण कीजिए।

4 यशपाल

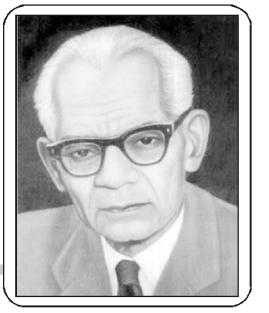

➥ व्यक्तित्व

यशपाल का जन्म 1903 ई० में फिरोजपुर छावनी (पंजाब) में हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा गुरुकुल-कांगड़ी में हुई, जहाँ के राष्ट्रीय वातावरण ने उनके मन को प्रभावित एवं उद्वेलित किया। तत्पश्चात् नेशनल कालेज, लाहौर में आप भगतसिंह तथा सुखदेव जैसे क्रान्तिकारियों के सम्पर्क में आये और अन्य सशस्त्र-क्रान्तिकारी-आन्दोलनों में सक्रिय हो उठे। राजद्रोह के अभियोग में आपको कारावास का दण्ड मिला। आपने लखनऊ से एक लोकप्रिय मासिक पत्र 'विप्लव' प्रकाशित किया। जेल-जीवन में भी आप स्वाध्याय तथा कहानी-लेखन में रत रहे। आपका देहावसान 26 दिसम्बर, 1976 ई० को हुआ।

➥ कृतित्व

यशपाल जी के कथा-संकलन हैं—'**पिंजरे की उड़ान**', '**ज्ञानदान**', '**अभिशप्त**', '**तर्क का तूफान**', '**भस्मावृत**', '**चिन्गारी**', '**वो दुनिया**', '**फूलो का कुर्ता**', '**धर्मयुद्ध**', '**उत्तराधिकारी**', '**चित्र का शीर्षक**', '**तुमने क्यों कहा था कि मैं सुन्दर हूँ; 'बीबीजी कहती हैं'; 'मेरा चेहरा रौबीला है'। 'दादा कामरेड', 'देशद्रोही', 'पार्टी कामरेड', 'दिव्या', 'मनुष्य के रूप में', 'अमिता**' तथा '**झूठा-सच**' आपके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। आपके निबन्धों तथा संस्मरणों के संग्रह भी प्रकाशित हो चुके हैं।

➥ कथा-शिल्प एवं भाषा-शैली

यशपाल जी यशस्वी कथाकार थे। यथार्थवादी तथा प्रगतिशील कहानीकारों में आपका विशिष्ट स्थान है। आपकी कहानियों में जीवन-संघर्ष में रत सन्तप्त मानव का स्वर मुखर हो उठा है। आप पर मार्क्सवादी विचारधारा का प्रभाव था।

आपने समस्या-प्रधान कहानियों की रचना की है। आपकी कहानियों के कथानक सरल एवं स्पष्ट हैं। वे अधिकतर मध्यवर्गीय जीवन से चुने गये हैं। कथावस्तु जन-जीवन के व्यापक क्षेत्र से सम्बद्ध है तथा सामाजिक जीवन के विविध पक्षों को प्रस्तुत करती है। आपने विविध वर्गों, स्थितियों एवं जातियों के पात्रों का चयन किया है तथा उनके जीवन-संघर्ष, विद्रोह एवं उत्साह के सजीव चित्र प्रस्तुत किये हैं। चरित्र-चित्रण मनोवैज्ञानिक है। यशपाल सामाजिक-जीवन के सन्दर्भ में मानव के मानसिक द्वन्द्वों के कथाकार थे। आपकी प्रमुख कहानियाँ हैं—'**धर्मयुद्ध**', '**फूल की चोरी**', '**चार आने**', '**अभिशप्त**', '**कर्मफल**', '**फूलो का कुर्ता**', '**पाँव तले की डाल**', '**वर्दी**', '**उत्तमी की माँ**' आदि।

आपकी कहानियाँ जन-सामान्य से सम्बद्ध हैं, अतः आपकी कहानियों की भाषा-शैली व्यावहारिक एवं सरल है। आपने सर्व-सामान्य में प्रचलित अन्य भाषाओं के शब्दों का भी प्रयोग किया है। मुहावरों एवं लोकोक्तियों के प्रयोग से रोचकता में वृद्धि हुई है। सामाजिक विकृतियों पर आपने बड़े तीखे व्यंग्य किये हैं। कहानियों में कथोपकथन अकृत्रिम एवं स्वाभाविक हैं। वे पात्रों की मनोदशा का स्पष्ट चित्र प्रस्तुत करने के साथ-साथ कथावस्तु को विकसित करने में योग देते थे।

●●●

समय

पापा की अवचेतना में रिटायर हो जाने से डेढ़-दो वर्ष पूर्व से ही चिन्ता सिर उठाने लगी थी—रिटायर हो जाने पर अवकाश का बोझ कैसे सँभलेगा? अपनी इस चिन्ता का निराकरण करने के लिए प्रायः ही कहने लगते—"लोग-बाग रिटायर होकर निरुत्साह क्यों हो जाते हैं? सोचिये नौकरी करते समय अवकाश के दिनों की प्रतीक्षा की जाती है। जब दीर्घ श्रम के पुरस्कार में पूर्ण अवकाश का अवसर आ जाये तो निरुत्साह होने का क्या कारण? इसे तो अपने श्रम का अर्जित फल मानकर, उससे पूरा लाभ उठाना और सन्तोष पाना चाहिए। अभाव होगा या मुक्ति मिलेगी केवल मजबूरी से, ड्यूटी की मजबूरी से। आराम और अपनी इच्छा से श्रम करने में तो कोई बाधा नहीं डालेगा। अध्ययन का मनचाहा अवसर होगा और पर-आदेश से मुक्ति। इससे बड़ा सन्तोष दूसरा क्या चाहिए?"

पापा के मन में बुढ़ापे और बुजुर्गों से या कहिए बूढ़े और बुजुर्ग समझे जाने से सदा विरक्ति रही है। रिटायर होने पर मितव्ययिता के विचार से गर्मियों में पहाड़ जाना छोड़ दिया है। सर्विस के समय गर्मियों में महीने-दो-महीने हिल स्टेशनों पर रह लेने का बहुत शौक था। प्रतिवर्ष नहीं तो दूसरे वर्ष अवश्य पहाड़ जाते थे। पहाड़ जाते तो चढ़ाइयों पर सुविधा से चल सकने के लिए एक-दो छड़ियाँ जरूर खरीद लेते और हर बार नयी छड़ियाँ खरीदते। परन्तु लखनऊ लौटने पर बाजार या सैर के लिए जाते समय छड़ी उनके हाथ में न रहती। कभी स्वास्थ्य का विचार आ जाता या शरीर पर माँस अधिक चढ़ने की आशंका होने लगती तो सुबह-शाम तेज चाल से सैर आरम्भ कर देते। प्रातः मुँह-अँधेरे सैर के लिए जाते समय अम्मी के सुझाने पर कुत्तों या ढोर-डंगरों से सावधानी के लिए छड़ी हाथ में होने पर भी उसे टेककर न चलते थे। छड़ी को पुलिस या सैनिक अफसर की तरह, बेटन की ढंग से, हाथ में लिये रहते। छड़ी टेककर चलना उनके विचार से बुढ़ापे या बुजुर्गी का चिह्न था।

पापा का कायदा था कि सन्ध्या समय टहलने के लिए अथवा शापिंग के लिए भी जाते तो केवल अम्मी को साथ ले जाते थे। बच्चों को साथ ले जाना उन्हें कम पसन्द था। अन्य बच्चों की तरह हम लोगों को भी अम्मी-पापा के साथ बाजार जाने की उत्सुकता बनी रहती थी। बाजार में हम बच्चे कोई भी चीज माँग लेते तो तनिक ठुनकने से ही मनचाही चीज मिल जाती थी। बाजार में पापा हम लोगों को डाँटते-धमकाते नहीं थे। उन्हें बाजार में तमाशा बनना पसन्द नहीं था। इसलिए अम्मी और पापा बाजार जाने के लिए तैयार होने लगते तो हम लोगों को नौकर या आया के साथ इधर-उधर टहला दिया जाता। बच्चों को बाजार ले चलने की अनिच्छा में सम्भवतः पापा की बुजुर्ग न जान पड़ने की भावना भी अवचेतना में रहती होगी।

पापा ने अवकाश प्राप्त हो जाने पर अवकाश के बोझ से बचने के लिए अच्छी खासी दिनचर्या बना ली है। अवकाश-प्राप्ति से कुछ महीने पूर्व ही उन्होंने योजना बना ली थी कि शासन-कार्य के छत्तीस वर्ष के अनुभव और चिन्तन के आधार पर 'एथिक्स ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन' (शासन का नैतिक पक्ष) पर एक पुस्तक लिखेंगे। दोपहर से पूर्व और अपराह्न में कम-से-कम दो-दो घण्टे इस विषय में अध्ययन करते रहते हैं अथवा नोट्स लिखते रहते हैं। पहले उन्हें काम के दबाव के कारण कम अवसर मिलता था परन्तु अब सप्ताह में एक-दो दिन निकट सम्बन्धियों और इष्ट-मित्रों की खोज-खबर लेने भी चले जाते हैं। अब किसी हद तक वे शापिंग भी करने लगे हैं। रसद और साग-सब्जी की खरीद उनके बस की नहीं। वह काम पहले अम्मी करती थीं और अब भी रिक्शा पर बैठकर स्वयं ही करती हैं। अलबत्ता हल्की-फुल्की चीजें, टूथब्रुश, ब्लेड, सिगार-सिगरेट, मोजे-रुमाल और दवा-दारू की खरीद के लिए पापा सन्ध्या के समय स्वयं हजरतगंज पैदल जाते हैं। कारण वास्तव में कुछ चलने-फिरने का बहाना।

पापा के स्वभाव और व्यवहार में कुछ और भी परिवर्तन आये हैं। पहले उन्हें अपनी पोशाक चुस्त रखने और व्यक्तिगत की बढ़िया चीजों का शौक रहता था। पोशाक के मामले में वे बिलकुल बेपरवाह नहीं हो गये हैं। परन्तु गत तीन वर्षों में जाड़े के आरम्भ में अम्मी हर बार उनसे एक नया ऊनी सूट बनवा लेने का अनुरोध कर रही हैं। पापा पुराने कपड़ों को काफी बताकर टाल जाते हैं। यही बात जूतों के मामले में भी है। अम्मी खीझकर कहती हैं—अपने लिये उन्हें जाने क्या कंजूसी हो गयी है! बच्चों को पहाड़ पर या सैर के लिए बाहर भेज देंगे। उनके लिये कपड़ों की जरूरत भी दिखायी दे जाती है; अपने लिये कुछ नहीं!...लगता है पापा अब अपने शौक और रुचियों को बच्चों द्वारा पूरा होते देखकर सन्तोष पाते हैं; मानो उन्होंने अपने व्यक्तित्व का न्यास बच्चों में कर लिया है।

पापा के बच्चों को बाजार साथ न ले जाने के रवैये में भी परिवर्तन हो गया है। उनके रवैये में परिवर्तन का एक प्रकट कारण यह हो सकता है कि अम्मी अब अपने स्वास्थ्य के कारण पैदल चलने से कतराती हैं और हम लोग उँगली पकड़कर साथ चलने वाले बच्चे नहीं रह गये हैं। कभी पापा या अम्मी के साथ चलना होता है तो हमारे कन्धे उनके बराबर या कुछ ऊँचे ही रहते हैं। पापा को आशंका नहीं है कि बच्चे बाजार में गुब्बारेवाले या आइसक्रीम वाले को देखकर हाथ फैलाकर ठुनकने लगेंगे। अब शायद अपने जवान, स्वस्थ, सुडौल बच्चों की संगति में उन्हें कुछ गर्व भी अनुभव होता होगा। इसलिए सन्ध्या समय हजरतगंज या बाजार जाते समय कभी मुझे, कभी मन्टू बहन को, कभी गोगी को, कभी कजिन पुष्पा को ही साथ चलने का संकेत कर देते हैं। उनके साथ हजरतगंज जाने पर हम लोगों को चाकलेट-टॉफी या आइसक्रीम के लिए कहना नहीं पड़ता। पापा हजरतगंज का चक्कर पूरा करके स्वयं ही प्रस्ताव कर देते हैं—"कहो, क्या पसन्द करोगे? कॉफी या आइसक्रीम?"

हमारे समवयस्क साथी हम लोगों को बाजार, पार्क या रेस्तरां में पापा के साथ देखकर कभी-कभी आँख दबाकर या किसी संकेत से हमारी स्थिति के प्रति विद्रूप या करुणा प्रकट कर देते हैं। निस्सन्देह पापा की उपस्थिति में सभी प्रकार की हरकतें या बातें नहीं की जा सकतीं परन्तु उनकी संगति बोर या उबा देने वाली भी नहीं होती। वे अन्य अवकाश-प्राप्त लोगों की सामान्य प्रवृत्ति के अनुसार केवल अपनी नौकरी के अनुभवों, ऐडवेंचर्स, नवयुवक लड़के-लड़कियों के लिए उपयुक्त विवाह-सम्बन्धों अथवा पुराने जमाने की सस्ती और आज की मँहगाई की ही चर्चा नहीं करते। उनके मानसिक सम्पर्क और चिन्ताएँ वैयक्तिक और पारिवारिक क्षेत्र में सिमट जाने के बजाय पढ़ने और सोचने का अधिक अवसर पाकर कुछ फैल ही गयी हैं। उनकी बातचीत में चुस्ती और हाजिर-जवाबी कम नहीं हुई बल्कि अपने को तटस्थ और अनासक्त समझ लेने से उनका तीखापन कुछ बढ़ गया। परन्तु हम लोग उनकी संगति के लिए बचपन के दिनों की तरह लालायित नहीं रह सकते। कारण यह है कि अठारह-बीस पार कर लेने पर हम लोग भी अपना व्यक्तित्व अनुभव करने लगे हैं। हम लोगों की अपनी वैयक्तिक रुझाने, अपने काम और अपने क्षेत्र भी हो गये हैं और उनके आकर्षण और आवश्यकताएँ भी रहती हैं। कभी-कभी पापा की आवश्यकता और हमारी संगति के लिए उनकी इच्छा और हमारी अपनी आवश्यकताओं और आकर्षणों में द्वन्द्व की स्थिति आ जाना अस्वाभाविक नहीं है।

सन्ध्या समय हम लोगों में से किसी-न-किसी को साथ ले जाने की इच्छा में पापा के दो प्रयोजन हो सकते हैं। एक प्रयोजन तो वे स्वीकार करते हैं। उन्हें बूढ़ों या बुजुर्गों की अपेक्षा नवयुवकों की संगति अधिक पसन्द है। दूसरा कारण पापा प्रकट नहीं करना चाहते। लगभग एक वर्ष से उनकी नजर पर आयु का प्रभाव अनुभव हो रहा है। अधिक देर तक पढ़ने-लिखने से धुँधलापन अनुभव होने लगता है। विशेषकर सूर्यास्त के पश्चात् यदि सड़क पर प्रकाश कम हो तो ठोकर खा जाते हैं और प्रकाश अधिक होने पर चकाचौंध से परेशानी अनुभव करते हैं। इसलिए सन्ध्या समय बाहर जाते हैं तो हम लोगों में से किसी को साथ ले जाना चाहते हैं।

पिछले जाड़ों की बात है। उस दिन डाक में आयी पत्रिका में एक बहुत रोचक लेख पढ़ रहा था। पापा के कमरे से अम्मी को सम्बोधन करती आवाज सुनायी दी—"एक जग गरम पानी भिजवा देना।" यह संकेत था कि दिन ढल गया है, पापा बाहर जाने की तैयारी आरम्भ कर रहे हैं। तब ध्यान आया, सूर्यास्त का समय हो जाने से कमरे में प्रकाश कर लेना चाहिए था परन्तु वह यात्रा-वर्णन समाप्त किये बिना पत्रिका हाथ से छूट न रही थी।

पापा की बाहर जाने की तैयारी अनेक घोषणाओं और पुकारों के साथ होती है ताकि सब जान जायँ—वे बाहर जा रहे हैं और कोई उनके साथ हो ले। मैंने सुना तो, परन्तु मन जापान के उस यात्रा-वर्णन में गहरा रमा हुआ था। पढ़ते-पढ़ते भी पापा की बाहर जाने की तैयारी की आहटें कान में पड़ रही थीं।

आहट से अनुमान हो रहा था कि पापा बाहर जाने के लिए जूते पहन चुके होंगे, टाई बाँध ली होगी। उनके कमरे से पुकार आयी—"कोई है हजरतगंज की सवारी।"

पापा की पुकार के स्वर से अनुमान हुआ कि उन्होंने ऊपर के कमरों की ओर मुँह करके पुकारा था। मेरे कमरे से अपनी तैयारी की कोई प्रतिक्रिया न सुनकर उन्होंने लड़कियों को पुकार लिया था। ऊपर से भी कोई उत्तर न आने पर पापा ने फिर पुकारा—"है कोई चलने वाला!"

पापा की इस पुकार की प्रक्रिया में ऊपर पुष्पा दीदी के कमरे से सुनायी दिया—"मन्टू, जाओ न, पापा के साथ घूम आओ।"

मन्टू ने अपने कमरे से पुष्पा दीदी को उत्तर दिया—"तुम भी क्या दीदी... बोर... बुड्ढों के साथ कौन बोर हो!"

मन्टू ने अपने विचार में स्वर दबाकर उत्तर दिया था, परन्तु उसकी बात पापा के समीप के कमरे में भी मैं सुन सका था। पत्रिका आँखों के सामने से हट गयी। नजर पापा के कमरे में चली गयी। पापा ने जरूर सुन लिया था। जान पड़ा, वे कोट हैंगर से उतारकर पहनने जा रहे थे, कोट उनके हाथ में रह गया। चेहरे पर एक विचित्र, विषण्ण-सी मुस्कान आ गयी। कोट उसी प्रकार हाथ में लिये कुर्सी पर बैठ गये। नजर फर्श की ओर परन्तु चेहरे पर विषण्ण मुस्कान। कई क्षण बिलकुल निश्चल बैठे रहे, मानो किसी दूर की स्मृति में खो गये हों।

मैंने दृष्टि पापा की ओर से हटा ली कि नजर मिल जाने से संकोच अथवा असुविधा न अनुभव करें। फिर पत्रिका उठा ली परन्तु पढ़ न पाया। अनुमान कर रहा था—'पापा क्या सोच रहे होंगे?' सहसा स्मृति में बचपन की याद कौंध गयी—तब हम लोग उनके साथ बाहर जाने के लिए कितने लालायित रहते थे। हमारी उस लालसा से उन्हें कभी-कभी परेशानी भी अनुभव हो जाती थी। एक दिन की स्मृति आँखों के सामने प्रत्यक्ष दिखायी देने लगी—

हम लोग अम्मी और पापा के साथ बाहर जाने की जिद करते तो पापा को अच्छा नहीं लगता था। अम्मी ऐसी अप्रिय स्थिति से बचने का यह उपाय करती थीं कि स्वयं बाहर जाने के लिए साड़ी बदलने से पहले हमें आया हुबिया या नौकर बहादुर के साथ कुछ समय के लिए बाहर भेज देती थीं। हम लोगों के लौटने से पहले ही अम्मी और पापा बाहर जा चुके होते।

एक दिन सन्ध्या समय अम्मी ने हम दोनों को बुलाकर कहा—"बच्चों, हुबिया साग-सब्जी लेने चौराहे तक जा रही है। तुम लोग भी घूम आओ।" उन्होंने हुबिया से भी कह दिया—"देखो, कुंजड़े के यहाँ ताजे नरम सिंघाड़े हों तो इन दोनों को ले देना।"

हम लोग हुबिया के साथ घर से बीस-पच्चीस कदम गये थे। मन्टू ने मुझे रोककर कहा—"सुनो, अम्मी पापा के साथ बाजार जा रही हैं। हम भी उनके साथ बाजार जाएँगे।" मन्टू ने हुबिया को सम्बोधन किया, "हुबिया, हमारी सैण्डल में कील लग रहा है। हम दूसरी सैण्डल पहनकर आते हैं।" हम दोनों घर की ओर भाग आये।

मन्टू का अनुमान ठीक था। हम लौटे तो ड्योढ़ी में पहुँचते ही अम्मी की पुकार सुनायी दी—"जी, आइए, मैं चल रही हूँ।" अम्मी बाहर जाने के लिए साड़ी बदले और जूड़े में पिनें खोंसती हुई आ रही थीं।

मन्टू अम्मी की कमर से लिपट गयी और डबडबाई आँखें अम्मी के मुँह की ओर उठाकर आँसू-भरे स्वर में हिचक-हिचककर गिड़गिड़ाने लगी—"कभी... कभी... कभी बच्चों को भी... तो... साथ... ले जाना चाहिए।"

तब तक पापा भी आ गये थे। उन्होंने पूछा—"क्या है, क्या है?" वे समझ गये थे, बोले—"अच्छा बच्चों, एकदम तैयार हो जाओ।"

अम्मी ने कहा—"आ मन्टू, तेरी फ्राक बदल दूँ।"

परन्तु मन्टू, अपनी इस हरकत से इतना शरमा गयी थी कि दोनों हाथों में मुँह छिपाकर भाग गयी। पापा और अम्मी के कई बार बुलाने पर भी नहीं आयी।

बात पापा के मन में लग गयी। उस समय बाहर नहीं जा सके। उसके बाद से हफ्ते-पखवाड़े में हम लोगों को भी बाजार ले जाने लगे थे। कभी-कभी खाने की मेज पर हम लोगों के साथ बैठने पर उस दिन की घटना—मन्टू रो-रोकर 'बच्चों को भी कभी साथ ले जाने' की दुहाई देने की बात सुनाने लगते और इसी प्रसंग से मन्टू झेंप जाती है।

आज पापा के साथ चलने के अनुरोध का उत्तर मन्टू दे रही है—"बोर... बुड्ढों के साथ बोर... "

पापा सहसा, मानो दृढ़ निश्चय से, कुर्सी से उठ खड़े हुए। कोट पहन लिया और अम्मी को सम्बोधन कर पुकारा—"सुनो, कई बार पहाड़ से छड़ियाँ लाये हैं, तो कोई एक तो दो!"

एक छड़ी उठाकर मैंने अपने कमरे में रख ली थी। पापा को उत्तर दिया, "एक तो यहाँ पड़ी है, चाहिए?" छड़ी कोने से उठाकर पापा के सामने कर दी।

"हाँ, यह तो बहुत अच्छी बात है।" पापा ने छड़ी की मूठ पर हाथ फेरकर कहा और छड़ी टेकते हुए किसी की ओर देखे बिना घूमने के लिए चले गये? मानो हाथ की छड़ी को टेककर उन्होंने समय को स्वीकार कर लिया।

अभ्यास प्रश्न

1. 'समय' कहानी के प्रमुख पात्र का चरित्र-चित्रण कीजिए।
2. कथावस्तु की दृष्टि से 'समय' कहानी की समीक्षा कीजिए।
3. कहानी के प्रमुख तत्त्वों को दृष्टि में रखते हुए 'समय' कहानी की विशेषताएँ लिखिए।
4. 'समय' कहानी के उद्देश्य पर प्रकाश डालिए।
5. 'समय' कहानी का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।
6. सप्रमाण सिद्ध कीजिए कि 'समय' एक सफल कहानी है।
7. 'समय' कहानी में "यशपाल ने मध्यवर्गीय जीवन की विषम परिस्थितियों की ओर संकेत किया है।" इस कथन की व्याख्या कीजिए।
8. 'समय' कहानी किस वर्ग-विशेष का प्रतिनिधित्व करती है? इसके विभिन्न रूपों पर प्रकाश डालिए।
9. अच्छी कहानी की सबसे बड़ी पहचान है कि उसे पढ़कर पाठक के मुँह से अनायास निकल जाय कि 'सच कहा है।' इस कथन के आधार पर 'समय' कहानी की समीक्षा कीजिए।
10. वातावरण और भाषा-शैली की दृष्टि से 'समय' कहानी की समीक्षा कीजिए।
11. पारिवारिक सम्बन्धों के विषय में 'समय' शीर्षक कहानी कौन-सा दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है?
12. कहानी के तत्त्वों के आधार पर 'समय' कहानी की समीक्षा कीजिए।
13. 'समय' कहानी की समीक्षा देश-काल के आधार पर कीजिए।
14. 'समय' कहानी के पात्रों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
15. 'समय' कहानी के मुख्य पात्र का चरित्र-चित्रण कीजिए।
16. 'समय' कहानी के प्रमुख पात्र की चारित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

●●●

5 जैनेन्द्र कुमार

➥ व्यक्तित्व

जैनेन्द्र का जन्म 1905 ई0 में अलीगढ़ (कौड़ियागंज) में हुआ था। बाल्यावस्था का नाम आनन्दीलाल था। हस्तिनापुर में स्थापित एक गुरुकुल में आपकी प्रारम्भिक शिक्षा के लिए व्यवस्था की गयी तथा उसी संस्था में आपका वर्तमान नामकरण भी हुआ। पंजाब से मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण कर आपने उच्च शिक्षा के लिए हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी में प्रवेश लिया। किन्तु, कांग्रेस के असहयोग आन्दोलन में सक्रिय सहयोग देने की प्रेरणा से पढ़ाई छोड़ कर दिल्ली चले गये। दिल्ली में आपने लगभग दो वर्ष तक व्यापार का भी काम किया। कुछ क्रान्तिकारी राजनीतिक पत्रों के संवाददाता के रूप में भी कार्य किया। जीवन की विषम परिस्थितियों में भी आपका लेखन-कार्य शिथिल नहीं हुआ। इसी बीच आपके प्रथम उपन्यास 'परख' को अकादमी पुरस्कार मिला। राजनीतिक आन्दोलनों में सक्रिय भाग लेने के कारण आपको कई बार जेल जाना पड़ा। इनकी प्रतिभा को देखते हुए 'आगरा विश्वविद्यालय' तथा 'गुरुकुलकाँगड़ी विश्वविद्यालय' ने इनको डी॰ लिट् की उपाधि से सम्मानित किया। 24 दिसम्बर, 1988 ई0 में आपका निधन दिल्ली में हुआ।

➥ कृतित्व

आपके कहानी संग्रह हैं—'**फाँसी**', '**वातायन**', '**नीलम देश की राजकन्या**', '**एक रात**', '**दो चिड़ियाँ**', '**पाजेब**' तथा '**जयसन्धि**'। आपकी सम्पूर्ण कहानियाँ '**जैनेन्द्र की कहानियाँ**' शीर्षक से सात भागों में प्रकाशित हुई हैं।

आपने '**परख**', '**तपोभूमि**', '**सुनीता**', '**त्यागपत्र**', '**कल्याणी**', '**सुखदा**', '**विवर्त**', '**व्यतीत**' और '**जयवर्धन**' उपन्यास भी लिखे हैं जो साहित्य-जगत् में बहुचर्चित तथा लोकप्रिय हुए हैं। आपने अनुवाद और सम्पादन का काम भी किया है। आपके अनेक निबन्ध-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इनके अनेक निबन्ध-संग्रह '**प्रस्तुत प्रश्न**', '**जड़ की बात**', '**पूर्वोदय**', '**साहित्य का श्रेय और प्रेय**', '**मन्थन**', '**सोच-विचार**', '**काम-क्रोध**', '**परिवार**', '**साहित्य संचय**', '**विचार-वल्लरी**' आदि प्रकाशित हो चुके हैं।

➥ कथा-शिल्प एवं भाषा-शैली

जैनेन्द्र की कहानी-कला चरित्र की निष्ठा तथा संवेदना के व्यापक धरातल पर विकसित हुई है। आपकी कहानियों में दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण विशेष रूप से उभरा हुआ है। दार्शनिक आधार पर लिखी हुई आपकी कहानियों में आपके गम्भीर चिन्तन एवं बौद्धिक सघनता का समावेश हुआ है। आपकी कहानियों के कथानक मुख्य रूप से संवेदना पर आधारित

हैं तथा पाठक के अन्तस्तल को स्पर्श करते हुए गतिशील हुए हैं। आपकी कहानियाँ मनोविश्लेषणात्मक तथा जीवन-दर्शन-परक भी हैं। फलतः उनमें विस्तार की अपेक्षा गहनता अधिक है। आपकी प्रमुख कहानियाँ हैं—**'जाह्नवी', 'पाजेब', 'एक रात', 'मास्टरजी'** आदि। आपके अधिकतर कथानक स्पष्ट तथा सूक्ष्म हैं। उनमें व्यक्ति को केन्द्र में रखकर समाज के जीवन का चित्रण किया गया है। आपने कथा-वस्तु के विकास में सत्य, अहिंसा, प्रेम, करुणा तथा मानवीय आदर्शों की स्थापना को महत्त्व दिया है।

आपने चरित्र-चित्रण पर विशेष बल दिया है तथा विविध प्रकार के चरित्रों की सृष्टि की है। मनोविश्लेषण के माध्यम से पात्रों के आन्तरिक द्वन्द्वों तथा मानसिक उलझनों को व्यक्त किया गया है। आपके पात्र मुख्यतः अन्तर्मुखी हैं। आप विशिष्ट पात्रों को विशिष्ट व्यक्तित्व देने में सफल रहे हैं। दूसरे प्रकार के पात्र वर्ग-प्रतिनिधि हैं जो प्रायः सामान्य कोटि में आते हैं।

जैनेन्द्र की शैली के विविध रूप हैं, जिनमें दृष्टान्त, वार्त्ता तथा कथा-शैलियाँ मुख्य हैं। नाटकीय एवं स्वगत-भाषण शैलियों का प्रयोग भी अनेक कहानियों में हुआ है। संस्कृत, उर्दू, अंग्रेजी के शब्दों को समेटे आपकी भाषा भावपूर्ण, चित्रात्मक एवं सशक्त है। यथोचित शब्द-रचना तथा भावानुकूल शब्द-चयन आपकी भाषा-शैली की उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं। जैनेन्द्र की कहानियों में संवादों की सीमित योजना हुई है, तथापि उनके कथोपकथन मानव-चरित्र का विश्लेषण करते हुए, पात्रों की चरित्रगत विशेषताओं एवं उनकी मानसिक स्थितियों को उजागर करते हैं।

आपकी कहानियों में निश्चित लक्ष्य है तथा उनमें चिन्तन की गहराई के अतिरिक्त अनुभूति की व्यंजना एवं आदर्श की प्रतिष्ठा का प्रयत्न भी हुआ है। आपने व्यक्ति के जीवन के आन्तरिक पक्षों, उसके रहस्यों एवं उसकी उत्कृष्टताओं को दार्शनिक दृष्टिकोण से उभारने का प्रयत्न किया है।

●●●

ध्रुव-यात्रा

(1)

राजा रिपुदमन बहादुर उत्तरी ध्रुव को जीतकर योरुप के नगर-नगर से बधाइयाँ लेते हुए हिन्दुस्तान आ रहे हैं। यह खबर अखबारों ने पहले सफे या मोटे अक्षरों में छापी।

उर्मिला ने खबर पढ़ी और पास पालने में सोते शिशु का चुम्बन किया।

अगले दिन पत्रों ने बताया कि योरुप के तट एथेन्स से हवाई जहाज पर भारत के लिए रवाना होते समय उन्होंने योरुप के लिए सन्देश माँगने पर कहा कि उसे 'अद्‌भुत' की पूजा की आदत छोड़नी चाहिए।

उर्मिला ने यह भी पढ़ा।

अब वह बम्बई आ पहुँचे हैं, जहाँ स्वागत की जोर-शोर की तैयारियाँ हैं। लेकिन उन्हें दिल्ली आना है। नागरिक आग्रह कर रहे हैं और शिष्ट-मण्डल मिल रहा है। उसकी प्रार्थना सफल हुई तो वह दिल्ली के लिए रवाना हो सकेंगे। अखबार के विशेष प्रतिनिधि का अनुमान है कि उनको झुकाना कठिन होगा। वह यद्यपि सबसे सौजन्य से मिलते हैं, पर यह भी स्पष्ट है कि उनको अपने सम्बन्ध के प्रदर्शनों में उल्लास नहीं है। संवाददाता ने लिखा है, "मैं मिला तब उनका चेहरा ऐसा था कि वह यहाँ न हों, जाने कहीं दूर हों।"

उर्मिला ने पढ़ा और पढ़कर अखबार अलग रख दिया।

सचमुच राजा रिपुदमन बम्बई नहीं ठहर सके। छपते-छपते की सूचना है कि आज सबेरे के झुटपुटे में उनका जहाज निर्विघ्न दिल्ली पहुँच गया है।

एक दिन, दो दिन, तीन दिन। उर्मिला रोज अखबार पढ़ती है। इन दिनों वह कहीं बाहर नहीं गयी। राजा रिपु को लोग अवकाश नहीं दे रहे हैं। सुना जाता है कि वह दिल्ली छोड़ेंगे। कहाँ जायेंगे, इसके कई अनुमान हैं। निश्चय यह है कि जायेंगे किसी कठिन यात्रा पर।

उर्मिला ने सदा की भाँति यह भी पढ़ लिया।

चौथे दिन एक बड़ा मोटा लिफाफा उसे मिला। अन्दर खत संक्षिप्त था। पढ़ा और उसी तरह मोड़कर लिफाफे में रख दिया। फिर बच्चे की ओर ध्यान दिया। वह जागने को तैयार न था। फिर भी उठाकर उसे कन्धे से लगाया और कमरे में डोलने लगीं।

(2)

इधर राजा रिपुदमन को अपने से शिकायत है। उन्हें नींद कम आती है। मन पर पूरा काबू नहीं मालूम होता। सामने की चीज पर एकाग्र होने में कठिनाई होती है। नहीं चाहते, वहाँ ख्याल जाते हैं। कभी तो अपनी ही कल्पनाओं से उन्हें डर लगने लगता है। अभी योरुप से आते हुए, ऊपर आसमान की तरह नीचे भी गहन और अपार नीलिमा को देखकर उन्हें होता था कि क्यों इस जहाज से मैं इस नगर में कूद नहीं पड़ूँ। सारांश इसी तरह की अस्त-व्यस्त बातें उनके मन में उठ आया करती हैं और वह अपने से असन्तुष्ट हैं।

योरुप में ही उन्होंने मानसोपचार के सम्बन्ध में आचार्य मारुति की ख्याति सुनी थी। भारत में और तिस पर दिल्ली में रखकर जिन मारुति को नहीं जानते थे, उन्हीं के विषय में योरुप के देशों से वह बड़ी श्रद्धा लेकर लौटे हैं। इसलिए

अवकाश पाते ही वह उनकी शरण में पहुँचे। यद्यपि सन् 1960 की बात है कि जिस वर्ष आचार्य का देहान्त हुआ, पर उस समय वह जीवित थे।

अभिवादनपूर्वक आचार्य ने कहा, "वैद्य के पास रोगी आते हैं। विजेता मेरे पास किस सौभाग्य से आये हैं?"

रिपु, "रोगी ही आपके पास आया है। विजेता छल है और उस दुनिया के छल को दुनिया के लिए छोड़िये। पर आप तो जानते हैं।"

आचार्य, "हाँ चेहरे पर आपके विजय नहीं पराजय देखता हूँ। शिकायत क्या है?"

रिपु, "मैं खुद नहीं जानता। मुझे नींद नहीं आती। और मन पर मेरा काबू नहीं रहता।"

"हूँ, क्या होता है?"

"जो नहीं चाहता, मन के अन्दर वह सब कुछ हुआ करता है।"

"खासतौर पर आप क्या नहीं चाहते?"

"क्या कहूँ? यही देखिये के हिन्दुस्तान लौट आया हूँ, जबकि ध्रुव पर अभी बहुत काम बाकी है। विजेता शब्द व्यंग्य है, ध्रुव देश भी हम सबके लिए उद्यान होना चाहिए। एक अकेला झण्डा गाड़ आने से क्या होता है? यह सब काम काफी है। फिर भी मैं हिन्दुस्तान आ गया। भला क्यों?"

मारुति गौर से रिपुदमन को देखते रहे। बोले, "तो हिन्दुस्तान न आना जरूरी था।"

"हाँ, आना किसी भी तरह जरूरी न था।"

"क्यों? हिन्दुस्तान तो घर है।"

"पर क्या मेरा? मेरा घर तो ध्रुव भी हो सकता है।"

आचार्य ने ध्यानपूर्वक रिपुदमन को देखते हुए कुछ हँसकर कहा, "यानी हिन्दुस्तान को छोड़कर कोई घर हो सकता है।"

राजा रिपुदमन ने उत्साह से कहा, "लेकिन क्यों कोई घर हो? और मेरे जैसे आदमी के लिए!"

आचार्य, "खैर, अब हम काम की बातें करें। अभी मैं कुछ नहीं कह सकता। कल पहली बैठक दीजिये, तीन बजकर बीस मिनट पर। डायरी रखते हैं? नहीं, तो अब से कल तक की डायरी रखिये। साथ जो खर्च करें उसका पायी-पायी हिसाब और जिनसे मिलें उनका ब्योरा भी लिखियेगा।"

"वह सब अभी न कह सकूँगा। मैं सोचता हूँ, कोई खराबी नहीं है। मैं वैज्ञानिक से अधिक विश्वासी हूँ। विश्वास में बहुत शक्ति है। अब हम कल मिलेंगे।... जी नहीं, इसके लिए बाहर सेक्रेटरी है।"

बड़े-बड़े नोटों को वापस पर्स में रखते हुए राजा ने कहा, "मेरा स्वास्थ्य आप मुझे दे दें तो मैं बड़ा ऋणी होऊँगा।"

आचार्य हँसकर बोले, "लेकिन आप तो स्वस्थ ही हैं। मैं आत्मा को मानता और शरीर को जानता हूँ। शरीर आत्मा का यन्त्र है। यन्त्र आपका साबित है, निरोग है—सब अवयव ठीक है। कृपया कल सबेरे आप यहाँ के यन्त्र-मन्दिर में भी हो आयें। सेक्रेटरी सब बता देंगे। वहाँ आपके हृदय, मस्तिष्क और शेष शरीर का पूरा निरीक्षण हो जायगा और परिणाम दोपहर तक मैं देख चुकूँगा। यह सब शास्त्रीय सावधानी है और उपयोगी भी है। लेकिन आप मान लें कि आपका शरीर एकदम तन्दुरुस्त है।... कल डायरी लाइयेगा।"

अगले दिन रिपुदमन समय पर पहुँचे। आचार्य ने तरह-तरह के नक्शे और चित्र उनके आगे रखे और कहा, "देखिये, आपके यन्त्र का पूरा खुलासा मौजूद है। मस्तक और हृदय-सम्बन्धी परिणाम सही नहीं उतरे हैं तो विकार उन अवयवों में मत मानिये। व्यतिरेक यों है भी सूक्ष्म... डायरी है?"

रिपुदमन ने क्षमा माँगी। कहा, "मैं चित्त को उस जितना भी तो एकाग्र न कर सका।"

आचार्य हँसे। बोले, "कोई बात नहीं; अगली बार सही, यह कहिए कि अपने भाई महाराज-साहब और रानी-माता से मिलने आप जाइयेगा। विजेता को जीतने के लिए मारके बहुत हैं, पर अपनों का मन जीतना भी छोटी बात नहीं है। मैंने कल फोन पर महाराज से बातें की थीं। आप जो करो वह उसमें खुशी हैं। लेकिन अपने सुख से आप इतने विमुख न

रहो—यह भी वह चाहते हैं। अच्छे-से-अच्छे सम्बन्ध मिल सकते हैं या आप चुन लो। विवाह अनिष्ट वस्तु नहीं है। वह तो एक आश्रम का द्वार है। क्यों, यह चर्चा अरुचिकर है?''

रिपुदमन ने कहा, ''जी, मैं उसके अयोग्य हूँ। विवाह से व्यक्ति रुकता है। वह बँधता है। वह तब सबका नहीं हो सकता। अपना एक कोल्हू बनाकर उसमें जुता हुआ चक्कर में ही घूम सकता है। नहीं, उस बारे में मुझे कुछ कहने को नहीं है।''

आचार्य हँसकर बोले, ''विवाह चक्कर सही। लेकिन प्रेम?''

रिपुदमन ने कुछ जवाब नहीं दिया।

''प्रेम से तो नाराज नहीं हो? विवाह का स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। प्रेम के निमित्त से उसकी सृष्टि है। इससे विवाह की बात तो दूकानदारी की है। सच्चाई की बात प्रेम है। इस बारे में तुम अपने से बात करके देखो। वह बात डायरी में दर्ज कीजियेगा। अब परसों मिलेंगे।''

''परसों यदि न गया।''

''कहाँ न गये?''

''यही हिमालय या कहीं।''

''जहाँ चाहे जाओ। लेकिन मेरा दो बैठकों का कर्ज अभी बाकी है। परसों वहीं तीन-बीस पर आप आओगे। अब घड़ी हमें समय देना नहीं चाहती।''

''परसों के विषय में मैं आशावान से अधिक नहीं हूँ।''

''अच्छा तो कल उनसे मिलकर आशा को विश्वास बना लीजिए, जिनसे न मिलने के लिए मुझसे मिला जाता है। फोन पर मिलिये, वह न हो और दूरी हो तो हवाई यात्रा कीजिए। पर खटका छोड़कर उनसे मिलिये—अवश्य और कल! रेग्युलेटर जहाँ है उसके विपरीत मेरी सलाह जाकर बेकार ही हो सकती है।''

रिपुदमन ने चमककर कहा, ''किसकी बात आप करते हैं।''

''नहीं जानता वह कौन है! और जानूँगा तो आप ही से जानूँगा।... देखिये, ध्रुव से और हिमालय से लड़ाई भी ठीक-ठीक तभी आपकी चलेगी, जब अपनी लड़ाई एक हद तक सुलझ चुकेगी। प्रेम का इनकार अपने से इनकार है।... लेकिन घड़ी की आज्ञा का उल्लंघन हम अधिक नहीं करेंगे।''

''देखिये, परसों यदि आ सका।''

''आ जायेंगे... नमस्कार।''

''नमस्कार।''

(3)

समय सब पर बह जाता है और अखबार कल को पीछे छोड़ आज पर चलते हैं। राजा रिपु नयेपन से जल्दी छूट गये। ऐसे समय सिनेमा के एक बॉक्स में उर्मिला से उन्होंने भेंट की। उर्मिला बच्चे को साथ लायी थी। राजा सिनेमा के द्वार पर उसे मिले और बच्चे को गोद में लेना चाहा। उर्मिला ने जैसे यह नहीं देखा और अपने कन्धे से उसे लगाये वह उनके साथ जीने पर चढ़ती चली गयी। बॉक्स में आकर सफलतापूर्वक उन्होंने बिजली का पंखा खोल दिया। पूछा, ''कुछ मँगाऊँ?''

''नहीं!''

घण्टी बजाकर आदमी को बुलाया। कहा, ''दो क्रीम?''

उसके जाने पर कहा, ''लाओ मुझे दो न, क्या नाम है!''

उर्मिला ने मुस्कराकर कहा, ''नाम अब तुम दो।''

''तो लो, आदित्यप्रसन्नबहादुर, खूब है!''

''बड़े आदमी बड़ा नाम चाहते हैं। मैं तो मधु कहती हूँ।''

"तो वह भी ठीक है, माधवेन्द्रबहादुर, खूब है।"

"तुम जानो। मुझे तो मधु काफी है।"

इस तरह कुल बातें हुईं और बीच ही में जरूरत हुई कि दोनों खेल से उठ जायँ और कहीं जाकर आपस की सफाई कर लें।

दूर जमुना किनारे पहुँचकर राजा ने कहा, "अब कहो, मुझे क्या कहती हो?"

"कहती हूँ कि तुम क्यों अपना काम बीच में छोड़कर आये?"

"मेरा काम क्या है?"

"मेरी और मेरे बच्चे की चिन्ता जरूर तुम्हारा काम नहीं है। मैंने कितनी बार तुमसे कहा, तुम उससे ज्यादा के लिए हो?"

"उर्मिला, अब भी मुझसे नाराज हो?"

"नहीं, तुम पर गर्वित हूँ।"

"मैंने तुम्हारा घर छुड़ाया। सब में रुसवा किया। इज्जत ली। तुमको अकेला छोड़ दिया। उर्मिला, मुझे जो कहो थोड़ा। पर अब बताओ, मुझे क्या करने को कहती हो? मैं तुम्हारा हूँ। रियासत का हूँ, न ध्रुव का हूँ। मैं बस, तुम्हारा हूँ। अब कहो।"

"देखो राजा तुम भूलते हो। गिरिस्ती की-सी बात न करो। महाप्राणों की मर्यादा और है। तुम उन्हीं में हो। मेरे लिए क्या यही गौरव कम है कि मैं तुम्हारे पुत्र की माँ हूँ। मुझे दूसरी सब बातों से क्या मतलब है? लेकिन तुम्हें हक नहीं कि मुझसे घिरो। दुनिया को भी जताने की जरूरत नहीं कि मेरा बालक तुम्हारा है। मेरा जानना मेरे गर्व को काफी है। मेरा अभिमान इसमें तीसरे को शरीक न करेगा। लेकिन मैं अपने को क्षमा नहीं कर सकूँगी, अगर जानूँगी कि मैं तुम्हारी गति में बाधा हूँ। अपने भीतर के वेग को शिथिल न करो, तीर की नाईं बढ़े चलो कि जब तक लक्ष्य पार हो। याद रखना कि पीछे एक है जो इसी के लिए जीती है।"

"उर्मिला, तुमने मुझे ध्रुव भेजा। कहती थी—उसके बाद मुझे दक्षिणी ध्रुव जीतने जाना होगा। क्या सच मुझे वहीं जाना होगा?"

"राजा, कैसी बात करते हो! तुम कहीं रुक कैसे सकते हो? जाना होगा, नहीं जाओगे? अतुल वेग तुममें है, क्या वह यों ही? नहीं, मैं देखूँगी कि कुछ उसके सामने नहीं टिक सकता। मैं तुम्हारी बनी, तो क्या इतना नहीं कर सकती? इस पुत्र को देखो। भवितव्य के प्रति यह तुम्हारा दान है। अब तुम उऋण हो, गति के लिए मुक्त हो। ध्रुव धरती के हो चुकेंगे, जबकि आकाश के सामने होंगे। राजा तुमको रुकना नहीं है। पथ अनन्त हो, यही गति का आनन्द है।"

"उर्मिला, मैं आचार्य मारुति के यहाँ गया था—"

"मारुति! वह ढोंगी?"

"वह श्रद्धेय है, उर्मिला।"

"जानती हूँ, वह स्त्री को चूल्हे के और आदमी को हल के लिए पैदा हुआ समझता है। वह महत्त्व का शत्रु और साधारणता का अनुचर है। उसने क्या कहा?"

"तुम उन्हें जानती हो?"

"माँ उनकी भक्त थी। वह अक्सर हमारे यहाँ आते थे। उन्हीं की सीख से माँ ने मुझे संस्कृत पढ़ायी और नयी हवा से बचाया। तभी से जानती हूँ। वह तेजस्विता का अपहर्ता है। अब वहाँ न जाना। उसने कहा क्या था?"

"कहा था, यह गति अगति है। जगह बदलना नहीं, सचेत होना गतिशीलता का लक्षण है। उसकी शायद राय है कि मुझे घूमना नहीं, विवाह करना चाहिए।"

"मैं जानती थी। और तुम्हारी क्या राय है?"

"वही जानने तुम्हारे पास आया हूँ। मारुति सब जानते हैं, मुझको तुम भी जानती हो। इसलिए तुम ही कहो, मुझको क्या करना है?"

"'विवाह नहीं करना है।''

''उर्मिला!''

''तुम्हारा शरीर स्वस्थ है और रक्त उष्ण है तो...''

''उर्मिला!''

''तो स्त्रियों की कहीं कमी नहीं है।''

''बको मत, उर्मिला, तुम मुझे जानती हो।''

''जानती हूँ, इसी से कहती हूँ। तुम्हारे लिए क्या मैं स्त्री हूँ? नहीं, प्रेमिका हूँ। मैं इस बारे में कभी भूल नहीं करूँगी। इसीलिए किसी स्त्री के प्रति तुममें मैं निषेध नहीं चाह सकती। मुझमें तुम्हारे लिए प्रेम है, इससे सिद्धि के अन्त तक तुम्हें पहुँचाये बिना मैं कैसे रह सकती हूँ।''

''उर्मिला, सिद्धि मृत्यु से पहले कहाँ है।''

''वह मृत्यु के भी पार है, राजा! इससे मुझ तक लौटने की आशा लेकर तुम नहीं आओगे। सौभाग्य का क्षण मेरे लिए शाश्वत है। उसका पुनरावर्तन कैसा?''

''उर्मिला, तो मुझे जाना ही होगा? तुम्हारे प्रेम-दया नहीं जानेगा?''

''यह क्या कहते हो, राजा! मैं तुम्हें पाने के लिए भेजती हूँ, और तुम मुझे पाने के लिए जाते हो। यही तो मिलने की राह है। तुम भूलते क्यों हो?''

''उर्मिला, आचार्य मारुति ने कहा था—साधारण रहो, सरल रहो। हम दोनों कहीं अपने साथ छल तो नहीं कर रहे हैं?''

''नहीं राजा, मारुति नहीं जानता। वह समझ की बात समझ से जो परे है, उस तक प्रेम ही पहुँच सकता है। जाओ राजा, जाओ। मुझको परिपूर्ण करो, स्वयं भी सम्पूर्ण होओ।''

''देखो उर्मिला, तुम भी रो रही हो।''

''हाँ, स्त्री रो रही है, प्रेमिका प्रसन्न है। स्त्री की मत सुनना, मैं भी पुरुष की नहीं सुनूँगी। दोनों जने प्रेम की सुनेंगे। प्रेम जो अपने सिवा किसी दया को, किसी कुछ को नहीं जानता।''

(4)

पौने चार बजे राजा रिपु आचार्य के यहाँ पहुँचे। डायरी दी। आचार्य ने उसे गौर से देखा। अनन्तर नोटबुक अलग रखी। कुछ देर विचार में डूबे रहे। अनन्तर सहसा उबरकर बोले, ''क्षमा कीजियेगा। मैं कुछ याद करता रह गया। आपने डायरी में संक्षिप्त लिखा। उर्मिला माता है और कुमारी है—यही न?''

''जी।''

''तुम्हारे पुत्र की अवस्था क्या है?''

''वर्ष से कुछ अधिक है।''

''उत्तरी ध्रुव जाने में उर्मिला की सम्मति थी?''

''प्रेरणा थी।''

''यह विचार उसने कहाँ से पाया?''

''शायद मुझसे ही।''

''आरम्भ से तुम विवाह को उद्यत थे, वह नहीं?''

''जी नहीं। मैं बचता था, वह उद्यत थी।''

''हुँह! बचते थे, अपनी स्थिति और माता-पिता के कारण?''

''कुछ अपने स्वप्नों के कारण भी।''

"हुँह... फिर?"

"गर्भ के बाद मैं तैयार हुआ कि हम साथ रहें।"

"विवाहपूर्वक?"

"जी, वह चाहे तो विवाहपूर्वक भी।"

"हूँह,... फिर?"

"तब उसका आग्रह हुआ कि मुझे ध्रुव के लिए जाना होगा।"

"तो उस आग्रह की रक्षा में आप गये?"

"पूरी तरह नहीं। मन से मैं भी साथ रहने का बहुत इच्छुक न था। इससे निकल जाना चाहता था।"

"तुम्हारे आने से तो वह प्रसन्न हुई।"

"शायद हुई। लेकिन रुकने से अप्रसन्न है।"

"क्या कहती है?"

"कहती है कि जाओ। जय-यात्रा की कहीं समाप्ति नहीं। सिद्धि तक जाओ जो मृत्यु के पार है।"

अकस्मात् आवेश में आकर आचार्य बोले, "कौन, उर्मिला? वही धनञ्जयी की लड़की? वह यह कहती है?

"जी!"

"वह पागल है।"

"यही वह आपके बारे में कहती है।"

आचार्य जोर से बोले, "चुप रहो, तुम जानते नहीं। वह मेरी बेटी है।"

"बेटी!"

"मैं बुड्ढा हूँ। रिपु, तुम समझदार हो। हाँ, सगी बेटी।"

"आचार्य जी, यह आप क्या कह रहे हैं? तो आप सब जानते थे।"

"सब नहीं तो बहुत-कुछ जानता ही था। देखो रिपुदमन, अब बताओ तुम क्या कहते हो?"

"मैं कुछ नहीं जानता, कुछ नहीं कहता। मेरे लिए सब उर्मि से पूछिये।"

"सुनो रिपुदमन, तुम अच्छे लड़के हो। उर्मि मुझसे बाहर न होगी। पुत्र की व्यवस्था हो जायेगी और तुम लोग विवाह करके यहीं रहोगे।"

रिपुदमन ने हाथों से मुँह ढँककर कहा, "मैं कुछ नहीं जानता। उर्मि कहे, वही मेरी होनहार है।"

"उर्मि तो मेरी ही बेटी है। रिपुदमन, निराश न हो।"

(5)

आचार्य के समक्ष पहुँचकर उर्मिला ने कहा, "आपने मुझे बुलाया था?"

"हाँ बेटी, रिपुदमन ने सब कहा है। जो हुआ, हुआ। अब तुम्हें विवाह कर लेना चाहिए।"

"अब से मतलब कि पहले नहीं करना चाहिए था?"

"विवाह हुआ है तब तो खुशी की बात है, फिर वह प्रकट क्यों न हो? तुम दोनों साथ रहो।"

"भगवान् पर तो सब प्रकट है। और साथ बहुतेरे लोग रहते हैं।"

"तो तुम क्या चाहती हो?"

"वही जो राजा रिपुदमन उस अवस्था में चाहते थे, जब मुझे मिले थे। उनके स्वप्न मेरे कारण भग्न होने चाहिए कि पूर्ण? मेरी चिन्ता उन्हें उनके प्रकृत मार्ग से हटाये, यह मैं कैसे सह सकती हूँ?"

"स्वप्न तो सत्य नहीं है, बेटी! तब की मन की बहक को उसके लिए सदा क्यों अंकुश बनाये रखना चाहती हो? एक भूल के लिए किसी से इतना चिढ़ना न चाहिए।"

"आचार्यजी, आप किस अधिकार से मुझसे यह कह रहे हैं?"

"रिपु ने जो अपनी हैसियत और माता-पिता के ख्याल से आरम्भ में विवाह में झिझक की, इसी का न यह बदला है?"

"आचार्यजी, आप इन बातों को नहीं समझेंगे। शास्त्र में से स्त्री को आप नहीं जान लेंगे।"

"बेटी, फिर कोई किसमें किसको जानेगा, बता दो?"

"सब-कुछ प्रेम में से जाना जायगा जोकि मेरे लिये आपके पास नहीं है।"

"सच बेटी, मेरे पास वह नहीं है। और तेरे लिए जितना चाहूँ उतना है, यह मैं किसी तरह न कह सकूँगा। लेकिन तुमसे जो सच्चाई छिपाता रहा हूँ और अब छिपा रहा हूँ, वह अनर्थ अपने लिये नहीं, तेरे प्रेम के लिए ही मुझसे बन सका है, यह भी झूठ नहीं है। बेटी, मैं काफी जी लिया। अब मरने में देर लगाने की बिलकुल इच्छा नहीं है। ऐसे समय तेरे अहित की बात कह सकूँगा, ऐसा निष्ठुर मुझे न मानना। रिपुदमन को भरमा मत, उर्मिला! किसी का सपना होने के लिए वह नहीं है। तुम लोग विवाह करो और राज-मार्ग पर चल पड़ो।"

उर्मिला ने हँसकर कहा, "आप थक गये हैं, आचार्यजी भीड़ चलती रही है, इसी कारण जो प्रशस्त और स्वीकृत हो गया है, वहाँ आपका राज-मार्ग है न? पर मुक्ति का पथ अकेले का है। अकेले ही उस पर चला जायगा। वहाँ पाण्डव तक पाँच नहीं हैं। सब एक-एक हैं।"

"बेटी, यह क्या कहती है? सनातन ने जिसको प्रतिष्ठा दी है, बुद्धि के अहंकार में उसका तर्जन श्रेयस्कर नहीं होने वाला है। उर्मिला, यह एक बुड्ढे की बात रखो। पर बेटी, उसे छोड़ो। बताओ, मुझे माफ कर सकोगी?"

"आप रिपुदमन की, अपनी समझ से उससे हित की ओर मोड़ना चाहते हैं, उसके लिए आपको क्षमा माँगने की जरूरत है?"

"तो तुम रिपु से नाराज ही रहोगी? उसके साथ अपने को भी दण्ड ही देती रहोगी?"

"मुझे पाने के लिए उन्हें जाना होगा, उन्हें पाने के लिए मुझे भेजना होगा—यह आपको कैसे समझाऊँ?"

"हाँ, मैं नहीं समझ सकूँगा। लेकिन मेरा हक और दावा है। सोचता था, भगवान् के आगे पहुँचूँगा, उससे पहले उस बात को कहने का मौका नहीं... ! क्यों तू अपने पिता की भी बात नहीं मानेगी?"

"पिता को जीते-जी इस सम्बन्ध में, मैं कब सन्तोष दे सकी?"

"बेटी, अब भी नहीं दे सकोगी?"

"उर्मिला ने चौंककर कहा, "क्यों आचार्यजी?"

मारुति का कण्ठ भर आया। काँपते हुए बोले, "हाँ बेटी! चाहे तो अब तू अपने बाप को सन्तोष और क्षमा दोनों दे सकती है।"

उर्मि स्तब्ध, आचार्य को देखती रही। उनकी आँखों से तार-तार आँसू बह रहे थे। उनकी दशा दयनीय थी। बोली, "मुझ अभागिन के भाग्य में आज्ञा-पालन तक का सुख, हाय, विधाता क्यों नहीं लिख सका? जाती हूँ, इस हतभागिन को भूल जाइयेगा।"

(6)

रिपुदमन ने कहा, "आचार्य से तुम मिली थीं?"

"मिली थी।"

"अब मुझे क्या करना है?"

"करना क्या है राजा, तुम्हें जाना है, मुझे भेजना है!"

"कहा जाना है—दक्षिणी ध्रुव!"

"हाँ, नहीं तो उत्तर के बाद कहीं तुम दक्षिण के लिए शेष न रहो।"

"दक्षिण के बाद फिर किसी के लिए शेष बचने की बात नहीं रह जायगी न?"

"दिशाओं के द्वार-दिगंत में हम खो जायँ। शेष यहाँ किसको रहना है?"

"छोड़ो, मैं तुम्हें नहीं समझता, तुम्हारी संस्कृत नहीं समझता। सीधे बताओ, मुझे कब जाना है?"

"जब हवाई जहाज मिल जाय।"

"तो लो, तुम्हारे सामने फोन से तय किये लेता हूँ।"

फोन पर भी बात करते समय टकटकी बाँधकर उर्मिला रिपु को देखती रही। अनन्तर पूछा, "तो परसों शटलैण्ड द्वीप के लिए पूरा जहाज हो गया?"

"हाँ, हो गया।"

"लेकिन परसों कैसे जाओगे, दल जुटाना नहीं है?"

"तुम्हारा मन रखूँगा! दल के लिए ठहरूँगा।"

"लेकिन उसके बिना क्या होगा? नहीं, परसों तुम नहीं जाओगे।"

"और न सताओ उर्मिला, जाऊँगा। अमरीका को फोन किये देता हूँ। दक्षिण से कुछेक साथी हो जायेंगे।"

"नहीं राजा, परसों नहीं जाओगे।"

"मैं स्त्री की बात नहीं सुनूँगा; मुझे प्रेमिका के मन्त्र का वरदान है।"

आँखों में आँसू लाकर उर्मिला ने रिपु के दोनों हाथ पकड़कर कहा, "परसो नहीं जाओगे तो कुछ हर्ज है? यह तो बहुत जल्दी है?"

रिपु हाथ झटककर खड़ा हो गया। बोला, "मेरे लिए रुकना नहीं है। परसों तक इसी प्रायश्चित में रहना है कि तब तक क्यों रुक रहा हूँ।"

उर्मिला के फैले हुए हाथ खाली रहे। और वह कहती ही रही, "राजा, ओ मेरे राजा!"

(7)

दुनिया के अखबारों में धूम मच गयी। लोगों की उत्कण्ठा का ठिकाना न था। योरुप, अमरीका, रूस आदि देशों के टेलीफोन जैसे इसी काम के हो गये। ध्रुव-यात्रा योजना की बारीकियाँ पाने के बारे में संवाददाताओं में होड़ मच उठी। रिपुदमन उन्हें कुछ न बता सका, यह उसकी दक्षता का प्रमाण बना। हवाई जहाज जो शटलैण्ड के लिए चार्टर हुआ था, उसकी विभिन्न कोणों से ली गयी असंख्य तस्वीरें छपीं।

उर्मिला अखबार लेती, पढ़ती और रख देती। अनन्तर शून्य में देखती रह जाती। नहीं तो बच्चे में डूबती।

एक दिन-दो दिन। वह कहीं बाहर नहीं गयी। टेलीफोन पास रख छोड़ा। पर कोई नहीं, कुछ नहीं अखबार के पन्नों से आगे और कोई बात उस तक नहीं आयी।

आज अन्तिम सन्ध्या है। राष्ट्रपति की ओर से दिया गया भोज हो रहा होगा। सब राष्ट्रदूत होंगे, सब नायक, सब दलपति। गई रात तक वह इन कल्पनाओं में रही।

तीसरा दिन। उर्मिला ने अखबार उठाया। सुर्खी है और बॉक्स में खबर है। राजा रिपुदमन सबेरे खून में मरे पाये गये। गोली का कनपटी के आर-पार निशान है।

खबर छोटी थी; जल्दी पढ़ ली गयी। लेकिन पूरे अखबार में विवरण और विस्तार के साथ दूसरी सूचनाएँ थीं। जिन्हें उर्मिला पढ़ती ही चली गयी, पढ़ती ही चली गयी। पिछली सन्ध्या को जगह-जगह राजा रिपुदमन के सम्मान में सभाएँ हुई थीं। उनकी चर्चा थी। खासकर राष्ट्रपति के उस भोज का पूरा विवरण था, जिसे दुनिया का एक महत्त्वपूर्ण समारोह कहा गया था।

उर्मिला रस की एक बूँद नहीं छोड़ सकी। उसने अक्षर-अक्षर सब पढ़ा।

दोपहर बीत गयी, तब नौकरानी ने चेताया कि खाना तैयार है। इस समय उसने भी तत्परता से कहा, ''मैं भी तैयार हूँ। यहीं ले आओ। प्लेट्स इसी अखबार पर रख दो।''

उसी दिन अखबारों ने अपने खास अंक में मृत व्यक्ति का तकिये के नीचे से मिला जो पत्र छापा था, वह भी नीचे दिया जाता है।

''सब के प्रति—

बन्धुओ,

मैं दक्षिणी ध्रुव जा रहा था, सब तैयारियाँ थीं। ध्रुव में मुझे महत्त्व नहीं है। फिर भी मैं जाना चाहता था। कारण, इस बार मुझे वापस आना नहीं था। ध्रुव के एकान्त में मृत्यु सुखकर होती। ध्रुव-यात्रा मेरी व्यक्तिगत बात थी, उसे सार्वजनिक महत्त्व दिया गया, यह अन्याय है। इसी शाम राष्ट्रपति और राष्ट्रदूतों ने मुझे बधाइयाँ दीं, मेरे पराक्रम को सराहा। पर उन्हें छल हुआ है। मैं यह श्रेय नहीं ले सकता। यह चोरी होगी। उस भ्रम में लोगों को रखना मेरे लिए गुनाह है। क्या अच्छा होता कि ध्रुव मैं जा सकता, लेकिन लोगों ने सार्वजनिक रूप से जो श्रेय मुझ पर डाला, उसका स्वल्पांश भी किसी तरह अपने साथ लेकर मैं नहीं बढ़ सकता हूँ। यात्रा एकदम निजी कारणों से थी। मुझे बहुत खेद है कि मैं किसी से मिले आदेश और उसे दिये अपने वचन को पूरा नहीं कर पा रहा हूँ; लेकिन ध्रुव पर भी मुझे बचना था नहीं। इसलिए बचना अब नहीं है। मुझे सन्तोष है कि किसी की परिपूर्णता में काम आ रहा हूँ। मैं पूरे होश-हवाश में अपना काम तमाम कर रहा हूँ। भगवान् मेरे प्रिय के अर्थ मेरी आत्मा की रक्षा करे!''

अभ्यास प्रश्न

1. 'ध्रुवयात्रा' कहानी के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए कहानी के शीर्षक की सार्थकता पर प्रकाश डालिए।
2. संवाद की दृष्टि से 'ध्रुवयात्रा' कहानी का मूल्यांकन कीजिए।
3. चरित्र-चित्रण की दृष्टि से 'ध्रुवयात्रा' कहानी का मूल्यांकन कीजिए।
4. 'ध्रुवयात्रा' कहानी की कथावस्तु का विवेचन कीजिए और कहानी का उद्देश्य स्पष्ट कीजिए।
5. 'ध्रुवयात्रा' कहानी के आधार पर उर्मिला का चरित्र-चित्रण कीजिए।
6. 'ध्रुवयात्रा' कहानी की मूल संवेदना को उद्घाटित कीजिए।
7. जैनेन्द्र की संकलित कहानी का सारांश लिखिए।
8. कहानी कला की दृष्टि से 'ध्रुवयात्रा' की समीक्षा कीजिए।
9. 'ध्रुवयात्रा' के प्रमुख पात्र का चरित्र-चित्रण कीजिए।
10. उद्देश्य की दृष्टि से 'ध्रुवयात्रा' की समीक्षा कीजिए।
11. 'ध्रुवयात्रा' कहानी की समीक्षा कीजिए।
12. 'ध्रुवयात्रा' कहानी की कथावस्तु संक्षेप में लिखिए।
13. 'ध्रुवयात्रा' कहानी की भाषा-शैली की समीक्षा कीजिए।
14. 'ध्रुवयात्रा' कहानी के उद्देश्यों पर प्रकाश डालिए।

●●●

कथा साहित्य

यह संकलन

प्रस्तुत संकलन में हिन्दी के लब्ध-प्रतिष्ठ कहानीकारों की पाँच चुनी हुई कहानियाँ संकलित हैं। विविध सामाजिक सन्दर्भों को आधार बनाकर विविध भाषा-शैलियों में गढ़ी हुई इन कहानियों में से हर एक की अपनी अलग गुणवत्ता है। इन कहानियों के माध्यम से छात्र-छात्राओं को हिन्दी कहानी के पुराने और नये रूपों का समग्र परिचय मिल सकेगा। दोनों प्रकार की कहानियों का संख्यात्मक अनुपात बराबर-बराबर है। निश्चय ही आदर्श और यथार्थ का यह सन्तुलन अध्येताओं को हिन्दी साहित्य और जीवन की एक स्वस्थ समझदारी दे सकेगा। इन कहानियों के द्वारा छात्र-छात्राओं को भारतीय ग्राम और नगर-समाज की सही झलक तो दिखायी देगी ही, उनमें अपनी संस्कृति और अपने राष्ट्र के प्रति एक ऐसा दायित्व-बोध उपज सकेगा जो उन्हें विचारशील नागरिक बनने की सजग प्रेरणा प्रदान करेगा।

प्रसिद्ध कहानीकार मुंशी प्रेमचन्द ने 'बलिदान' कहानी के माध्यम से तत्कालीन समाज में व्याप्त जमींदारी प्रथा के अवगुणों पर प्रकाश डाला है। प्रस्तुत कहानी में काश्तकार गिरधारी प्रमुख पात्र है। जयशंकर प्रसाद जी ने 'आकाशदीप' कहानी के माध्यम से प्रेम और कर्त्तव्य निष्ठा का अनुपम आदर्श प्रस्तुत किया है। भगवतीचरण वर्मा द्वारा लिखित कहानी 'प्रायश्चित' में कबरी बिल्ली के माध्यम से धार्मिक ढकोसले एवं अन्धविश्वास की खिल्ली उड़ायी गयी है। यशपाल द्वारा लिखित कहानी 'समय' में एक नौकरीपेशा मध्यम परिवार की कथा वर्णित है। इस कहानी के माध्यम से पीढ़ियों के चिन्तन का सूक्ष्म अन्तर दिखाया गया है। जैनेन्द्र जी ने 'ध्रुवयात्रा' कहानी में दो प्रेमियों के मानसिक अन्तर्द्वन्द्व की भयानक परिणति को दर्शाया है।

हमें विश्वास है कि यह संकलन अध्येताओं को हिन्दी कहानी का सही परिचय दे सकेगा।

भूमिका

कहानी गद्य-साहित्य की सबसे लोकप्रिय विधा मानी जाती है। आरम्भ में मनोरंजन और आत्म-परितोष के लिए कहानी कही-सुनी जाती थी। बाद में व्यक्ति और समाज के महत्त्वपूर्ण अनुभवों को प्रकट करने के लिए तथा नीति और उपदेश, सामाजिक सुधार, बाह्य एवं आन्तरिक अनुभूतियों आदि की अभिव्यक्ति के लिए भी कहानी को माध्यम बनाया गया। कहानी अपनी वर्णनात्मक विशेषता के कारण अत्यन्त प्रभावशाली विधा रही है।

निबन्ध की तुलना में कहानी गद्य की बहुत सरल विधा है। कदाचित इसीलिए उसका चलन भी निबन्ध के पहले से है। कहानी कहना और सुनना सभी अवस्था के लोगों को प्रिय है। पर कहानी केवल मनोरञ्जन का ही साधन नहीं है, वह गहन विचारों और सन्देशों को भी वहन करती है। विश्व-साहित्य में ऐसी भी कहानियाँ लिखी गयी हैं जो देश और काल की सीमा का अतिक्रमण करती हुई मानव-मन पर अपना स्थायी प्रभाव छोड़ गयी हैं।

परिभाषा

कहानी के लक्षण और परिभाषा के सम्बन्ध में विचारकों के अलग-अलग मत हैं। **प्रेमचन्द** के अनुसार, "कहानी ऐसा उद्यान नहीं जिसमें भाँति-भाँति के फूल और बेलबूटे सजे हुए हों, बल्कि वह एक गमला है जिसमें एक ही पौधे का माधुर्य अपने समुन्नत रूप में दृष्टिगोचर होता है।"

पं० रामचन्द्र शुक्ल ने कहानी की परिभाषा इस प्रकार दी है—"सादे ढंग से केवल कुछ अत्यन्त व्यञ्जक घटनाएँ और थोड़ी बातचीत सामने लाकर क्षिप्र गति से किसी एक गम्भीर संवेदना या मनोभाव में पर्यवसित होनेवाली गद्य विधा कहानी है।"

एडगर एलन पो का अभिमत है कि "कहानी एक निश्चित प्रकार का वर्णनात्मक गद्य है जिसके पढ़ने में आधे से लेकर एक घण्टे का समय लगता है।"

इन तथा अन्य परिभाषाओं के आधार पर कहानी के लक्षण निम्नांकित रूप में निर्धारित किये जा सकते हैं—

1. कहानी में एक ही विषय अथवा संवेदन का प्रस्तुतीकरण होता है।
2. कहानी का एक निश्चित उद्देश्य होता है तथा उसमें संवेदनात्मक अन्विति होती है।
3. मानवीय संवेदनाओं, अनुभूतियों एवं तथ्यों की रोचक व्यञ्जना होती है।
4. वस्तु तत्त्व (चरित्र, घटनाएँ, कथानक) का आकार लघु होता है।
5. मनोरञ्जन के साथ-साथ जीवन की शाश्वत समस्याओं का प्रकाशन भी कहानी का लक्ष्य है।

कहानी के तत्त्व

कहानी में 6 तत्त्वों की प्रधानता होती है—

(1) कथानक
(2) पात्र एवं चरित्र-चित्रण
(3) कथोपकथन (संवाद)
(4) वातावरण (देश-काल)
(5) भाषा-शैली
(6) उद्देश्य

➥ कथानक

कहानी में कथानक सबसे प्रधान तत्त्व है। कहानी में वस्तुविन्यास अथवा कथानक का निबन्धन सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य है। घटना-प्रधान कहानियों में तो कथानक का ही विशेष महत्त्व है, परन्तु अन्य प्रकार की कहानियों में भी इसका महत्त्व कम नहीं है। कथानक के नियोजन पर ही कहानी की सफलता निर्भर करती है। वस्तुतः कथानक के बिना कहानी का कोई अस्तित्व ही नहीं है। यद्यपि अधुनातन कहानी में इस बात की भी चेष्टा की जाती रही है कि कथानक अनिवार्य न रहे, पर ऐसा कोई प्रयोग बहुत सफल नहीं हो सका है।

आज कहानियों में कथानक का निषेध तो नहीं हो सका, पर उसका ह्रास अवश्य लक्षित होता है और उसके स्थान पर मनःस्थितियों पर पड़नेवाले प्रभाव को महत्त्व दिया जाने लगा है। इस तरह कथानक का आधार क्षीण होता जा रहा है, यद्यपि कथानक के सूत्र किसी-न-किसी रूप में विद्यमान रहते ही हैं। जैनेन्द्रकुमार की 'एक रात', इलाचन्द्र जोशी की 'रोगी', उषा प्रियम्वदा की 'मछलियाँ', मन्नू भण्डारी की 'तीसरा आदमी' आदि कहानियाँ ऐसी ही हैं। कहानी का कथानक प्रभावोत्पादक, विचारोत्तेजक एवं जीवन के यथार्थ से सम्बद्ध होना चाहिए। कहानी का स्वरूप निश्चित करते समय कहानीकार को युग-बोध और भाव-बोध दोनों दृष्टियों से विचार करना चाहिए। कहानी में आरम्भ, उत्कर्ष और अन्त—तीन कथा-स्थितियाँ होती हैं और तीनों का ही अत्यधिक महत्त्व है। आरम्भ में परिचयात्मक स्वरूप धारण करते हुए कहानी परिस्थितिजन्य प्रभावों को एकत्र करती हुई अत्यन्त तीव्रता से उत्कर्ष बिन्दु पर पहुँचती है। इसीलिए कहा जाता है कि कहानी उस छोटी दौड़ की प्रतियोगिता की भाँति है, जिसमें आरम्भ से लेकर अन्त तक दौड़ की तीव्रता में कहीं कमी नहीं आती। इस दृष्टि से वस्तु-विन्यास के आरम्भ, मध्य और समापन—तीनों में गति की तीव्रता का नैरन्तर्य बराबर बना रहना चाहिए।

यदा-कदा ऐसी कहानियाँ भी मिलती हैं, जिनमें दुहरे कथानक होते हैं। नयी कहानियों में यह प्रवृत्ति विशेष रूप से मिलेगी। ऐसी कहानियों में प्रभावान्विति खण्डित नहीं होती, कहानी के मूल भाव के अनुसार ही कथावस्तु की संरचना की जाती है। कथावस्तु में क्रमबद्धता के साथ-साथ कुतूहल एवं चमत्कार का भी विशेष महत्त्व है। तिलस्मी, जासूसी आदि कहानियों में चमत्कारपूर्ण योजना ही प्रधान हुआ करती हैं। कथानक में द्वन्द्व और संघर्ष का स्थान भी महत्त्वपूर्ण है। कभी-कभी द्वन्द्व चित्रण ही कहानी का मुख्य ध्येय बन जाता है। यह द्वन्द्व भौतिक भी होता है और मानसिक भी। कभी व्यक्ति को अपने समानधर्मी व्यक्ति से, कभी परिस्थितियों से और कभी स्वयं अपने अन्तःकरण के मनोभावों से लड़ना पड़ता है। द्वन्द्व से कथानक में नाटकीयता उत्पन्न हो जाती है और कहानी रुचिकर हो जाती है।

कथानक में कल्पना संभाव्य और असंभाव्य दोनों रूपों में व्याप्त होती है। लेखक जिस विषय को कहानी का प्रतिपाद्य बनाता है, उसे प्रस्तुत करने के लिए वह ऐसे कारण, कार्य और परिणाम की योजना करता है जो कथ्य को प्रभावोत्पादक बनाकर यथार्थ धरातल पर प्रतिष्ठित कर सके। इसके लिए उसे पूरे कथानक को परिच्छेदों में विभाजित करना पड़ता है अथवा ऐसे मोड़ देने पड़ते हैं कि कथ्य प्रभावान्विति का कारण बन सके।

कथानक में आदि, मध्य और अन्त—तीन महत्त्वपूर्ण स्थल हैं। आदि से अन्त तक कहानी की एकोन्मुखता बनी रहती है। वस्तु के अनुरूप ही कहानी के कथानक की योजना करनी पड़ती है। आदि में वह पीठिका तैयार करनी पड़ती है जिस पर कहानी का अन्त प्रतिष्ठित होता है। कहानी का मध्य-बिन्दु वह स्थल है, जहाँ कहानी अपनी चरम सीमा पर पहुँचकर पाठक की उत्सुकता को विशेष तीव्र एवं संवेदनशील बनाती है। कहानी को वास्तविक आकार मध्य में ही मिलता है। कभी-कभी कहानी में मध्य बिन्दु का पता नहीं लगता और कथानक की चरम सीमा अन्त में व्यक्त होती है। इस दृष्टि से समापन का स्थल अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यहीं पहुँचकर कहानी अपनी सम्पूर्ण संवेदनशीलता, प्रभावोत्पादकता एवं पूर्णता का परिचय देती है। प्रभाव की पूर्णता समापन का लक्ष्य है। सारी जिज्ञासा की वृद्धि और कुतूहल की समाप्ति यहीं आकर होती है। मूलभाव की प्रतीति इसी स्थल पर होती है। कहानी का अन्त लघु, सांकेतिक और स्पष्ट होना आवश्यक है। लेखक को यह ध्यान में रखना पड़ता है कि अन्त ऐसे स्थल पर हो, जहाँ कहानी का सम्पूर्ण अन्तरंग ऐसे बिन्दु पर पहुँचकर अनावृत हो जाय कि आगे कुछ कहने की आवश्यकता न रहे। कुछ कहानियाँ ऐसी भी लिखी गयी हैं जिनमें कथावस्तु, घटनाओं और कार्य-कारण आदि की स्थिति एकदम नगण्य है।

➥ पात्र एवं चरित्र-चित्रण

कहानी के मूल भाव के अनुसार ही पात्रों के व्यक्तित्व, चरित्र एवं प्रवृत्तियों का निर्धारण होता है। मानव का चरित्र जब बहुमुखी और जटिल नहीं हुआ था तब बाह्य घटनाओं का चमत्कारपूर्ण वर्णन कहानी के आकर्षण का केन्द्र था। साहित्य की सभी विधाओं

में घटनाओं और संघर्ष की ही प्रधानता थी। चरित्रों का विभाजन—धीरोदात्त, धीरललित, धीरोद्धत और धीरप्रशान्त रूप में करके उनकी सीमाएँ निर्धारित कर दी गयी थीं और उनके गुण-दोष तालिकाबद्ध थे। परन्तु 19वीं शती के आरम्भ में वैज्ञानिक प्रगति एवं मनोवैज्ञानिक उपलब्धियों ने साहित्य की निर्धारित मान्यताओं में युगान्तर उपस्थित किया। सामाजिक आचार-विचार एवं मान्यताओं में भी परिवर्तन हुआ और चरित्रों में अनेक जटिलताओं एवं रूपों की सृष्टि हुई। अब मानव-चरित्र कई स्तरों में विभाजित हो गया है। एक ही व्यक्ति के चरित्र में द्विव्यक्तित्व और बहुव्यक्तित्व का रूप दिखायी पड़ता है। भौतिकवादी और व्यावसायिक दृष्टि की प्रधानता होने से प्राचीन आदर्शवादी एवं नैतिक दृष्टि बहुत पीछे छूट गयी है। प्रत्येक मनुष्य अथवा मनुष्य द्वारा सम्पादित कोई विशिष्ट कार्य अथवा मनुष्य से सम्बद्ध कोई घटना ही इस मूलभाव के अन्तर्गत रहती है। घटना अथवा वातावरण को भी सजीव रूप देने के लिए, उसे प्राणमय बनाने के लिए मनुष्य को प्रतिष्ठित करना पड़ता है। निष्कर्ष यह है कि कहानी का मूलभाव चाहे जो भी हो, मानव-चरित्र की प्रतिष्ठा ही कहानी का प्रधान विषय है। कहीं मनुष्य मूलभाव से सीधे सम्बद्ध होता है और कहीं प्रकारान्तर से। कहानी में पात्र और कथावस्तु का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध होता है। दोनों मिलकर कहानी के केन्द्रीय भाव को व्यक्त करते हैं। कुछ पात्र सामान्य होते हैं और कुछ प्रतीकात्मक। सामान्य पात्रों के भी दो वर्ग होते हैं—कुछ वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं और कुछ व्यक्ति का। कहानी लघु प्रसारवाली होती है। इसलिए उसमें नायक के चरित्र को ही अधिक उभारकर प्रस्तुत किया जाता है। दूसरे पात्रों के चरित्र की प्रमुखता होने पर कहानी का मूल भाव आच्छन्न हो जायगा। कहानी में उपन्यास की भाँति चरित्रांकन में वैविध्य की गुंजाइश नहीं होती। इसमें चरित्र या जीवन के किसी एक पक्ष की झलक मिलती है। किसी एक विशेष परिस्थिति में रखकर नायक की किसी एक प्रवृत्ति का उद्‌घाटन करना ही कहानीकार का अभीष्ट हुआ करता है। चरित्रांकन की सफलता के लिए यह भी आवश्यक है कि चरित्र गतिशील हो और यथार्थ जीवन से सम्बद्ध हो। चरित्र-चित्रण यदि पुरानी रूढ़ियों एवं सिद्धान्तों के अनुसार किसी एक घिसी-पिटी परिपाटी से किया जायगा तो वह पत्थर की मूर्ति की तरह निर्जीव हो जायगा।

आज के बौद्धिक युग का पाठक चारित्रिक वैचित्र्य को देखना व समझना चाहता है। अन्तर्जगत् के भावात्मक संघर्ष में उसे एक विशेष प्रकार का रस मिलने लगा है। पहले की कहानियों में कुतूहल एवं जिज्ञासा जगाने और उसे तृप्त करने की प्रवृत्ति ही प्रधान थी, परन्तु आजकल का पाठक बौद्धिक दृष्टि से बहुत आगे बढ़ गया है। वह कहानी में चरित्र की सूक्ष्मता और चारित्रिक भंगिमाओं का वैविध्य देखने की आकांक्षा रखता है। इसीलिए आज की कहानियों में वैविध्य-विधायिनी मनोवृत्तियों के उद्‌घाटन की प्रवृत्ति अधिक दिखलायी पड़ती है। वेशभूषा, बाह्य क्रियाकलाप, शारीरिक द्वन्द्व आदि स्थूल बातें अब हमें तृप्त नहीं करतीं। आज के पाठक की इच्छा होती है कि वह विचित्र चरित्र के मनोलोक में प्रवेश कर उसके अन्तर्जगत् की झाँकी प्राप्त कर सके। तात्पर्य यह कि आज की सबसे उत्तम कहानी का आधार मनोवैज्ञानिक सत्य है। वातावरण एवं परिस्थितियों का अब कोई स्वतन्त्र महत्त्व नहीं रह गया है। वे पात्रों के सूक्ष्म मनोभावों के प्रस्तुतीकरण में योगदान करते हैं। चरित्र का युद्धस्थल, उसका सारा संघर्ष अब बाह्य से अधिक आन्तरिक हो गया है। आन्तरिक द्वन्द्वों के अनुरूप ही बाहरी घटनाएँ और क्रिया-व्यापार मुख्य रूप से प्रस्तुत किये जा रहे हैं। मनोवैज्ञानिक चरित्रांकन के साथ-साथ आज ऐसे चरित्रांकन की माँग है जो ईमानदारी के साथ मानव के यथार्थ स्वरूप की अवतारणा कर सके। चरित्रचित्रण की तीन प्रणालियाँ कहानियों में दिखलायी पड़ती हैं—वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक और नाटकीय।

वर्णनात्मक प्रणाली के द्वारा लेखक स्वयं चरित्र की विशेषताओं का वर्णन करता है। विश्लेषणात्मक कहानियों में विभिन्न मानसिक स्थितियों का विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए लेखक चरित्र की विशेषताओं का उद्‌घटन करता है तथा सांकेतिक प्रणाली अपनाकर चरित्र के महत्त्वपूर्ण अंशों की ओर संकेत कर देता है और मूल्यांकन पाठकों पर छोड़ देता है। नाटकीय पद्धति में वार्त्तालाप और क्रिया-व्यापार की प्रधानता होती है।

➥ कथोपकथन

कथोपकथन के मुख्यतः दो कार्य होते हैं—पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं को उद्‌घाटित करना और कथा-प्रवाह को आगे बढ़ाना। कहानी में कथोपकथन को पूर्ण नियन्त्रित, चमत्कारयुक्त एवं लघुप्रसारी होना चाहिए। कहानी के आरम्भ में जिज्ञासा और कुतूहल को जगाने के लिए बहुधा नाटकीय संवादों की योजना करनी पड़ती है। परिस्थिति एवं पात्रों को जोड़ने के लिए और आन्तरिक भावों एवं मनोवृत्तियों के उद्‌घाटन के लिए संवाद-तत्त्व (कथोपकथन) की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। कथोपकथन में मात्रा और औचित्य पर भी ध्यान रखना जरूरी है। आवश्यकता से अधिक वार्त्तालाप उबा देनेवाला होता है और औचित्य का विचार न करके की गयी संवाद-योजना कहानी की प्रभावान्विति में बाधा डालती है। अतः पात्र की शिक्षा-दीक्षा, देश-काल और सामयिक स्थिति के अनुरूप ही संवादों की योजना की जानी चाहिए।

चरित्रप्रधान कहानियों में व्यक्तित्व और उसकी प्रवृत्तियों का परिचय देने के लिए कथोपकथन विशेष महत्त्वपूर्ण होता है। वार्त्तालाप द्वारा ही चारित्रिक विशेषताएँ प्रकट होती हैं। पात्र का अन्तरंग वाणी के माध्यम से उद्‌घाटित होता है। इसके लिए भावानुरूप वाक्य-

योजना एवं शब्द-चयन अपेक्षित है। कही जानेवाली बात किस युग, काल अथवा देश की है, इसका भी कथोपकथन की योजना करते समय ध्यान रखना आवश्यक है। अभिवादन, सम्बोधन, प्रेम, क्रोध आदि को व्यक्त करने के लिए औचित्य एवं मर्यादा को ध्यान में रखकर भाषा का प्रयोग आवश्यक है। इसी प्रकार विभिन्न वर्गों जैसे मजदूर, किसान, अध्यापक, ग्रामीण और नगरीय चरित्रों की दृष्टि से भी भाषा का प्रयोग करना पड़ता है। व्यावहारिक एवं भावात्मक स्थलों के अनुसार विषयानुरूप संगति बैठानेवाली वाक्य-योजना से ही कहानी सुरुचिपूर्ण एवं मार्मिक बनती है। कथानक, विषय-प्रतिपादन एवं पात्र-योजना की दृष्टि से कथोपकथन की भाषा को व्यावहारिक स्वरूप देना पड़ता है। मुहावरों का सामाजिक एवं प्रसंगानुकूल प्रयोग भी कहानीकार के लिए आवश्यक है। शिष्ट हास्य और व्यंग्य से समन्वित होकर कथोपकथन सजीव हो जाता है।

कथोपकथन के प्रायः दो रूप मिलते हैं—विशुद्ध नाटकीय और विश्लेषणात्मक। विशुद्ध नाटकीय ढंग से लेखक अपनी ओर से कुछ भी नहीं जोड़ता। दो पात्र परस्पर वार्त्तालाप करते हैं। विश्लेषणात्मक ढंग में लेखक अपनी ओर से पात्रों के सम्बन्ध में उनकी मुद्राओं और भाव-भंगिमाओं का उद्‌घाटन करने के लिए कथोपकथन की योजना करता है। प्रथम प्रकार के कथोपकथन की प्रणाली प्रेमचन्द की कहानी 'सुजान भगत' और दूसरे प्रकार के कथोपकथन का उदाहरण भगवतीचरण वर्मा की 'प्रायश्चित्त' कहानी में मिलता है।

➥ वातावरण

वातावरण के अन्तर्गत देश-काल और परिस्थिति आती है। लेखक घटना और पात्रों से सम्बन्धित परिस्थितियों का चित्रण सजीव रूप में करता है। सम्पूर्ण परिस्थितियों की योजना साभिप्राय और क्रमिक ढंग से की जाती है। प्रकृति, ऋतु, दृश्य आदि का अत्यन्त संक्षिप्त और सांकेतिक रूप में वर्णन करके किसी घटना अथवा परिणाम को सजीव एवं यथार्थ बना दिया जाता है। प्रेमचन्द की 'सुजान भगत' और प्रसाद की 'पुरस्कार' कहानी में इस प्रकार की योजनाएँ मानवीय प्रवृत्तियों एवं परिस्थितियों के अनुकूल की गयी हैं। वातावरण के दृश्य-विधान से न केवल चरित्र की मनःस्थिति पर प्रकाश पड़ता है, वरन् प्रेम, शोक आदि व्यापार सजीव बन जाते हैं। 'उसने कहा था' कहानी में वातावरण का यह चित्र लहनासिंह की मृत्यु की ओर संकेत देते हुए परिस्थिति को कितना बिम्बग्राही बना देता है—''लड़ाई के समय चाँद निकल आया था, ऐसा चाँद जिसके प्रकाश से संस्कृत कवियों का दिया हुआ क्षयी नाम सार्थक होता है। और हवा ऐसी चल रही थी, जैसी बाणभट्ट की भाषा में दन्तवीणोपदेशाचार्य कहलाती है।''

मनुष्य का रचनात्मक विकास और ह्रास बहुत कुछ वातावरण की ही देन है। संवेदना यदि कहानी की आत्मा है तो वातावरण उसका शरीर। 'आकाशदीप', 'पुरस्कार', 'बिसाती', 'दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी', 'रोज' और 'मक्रील' आदि कहानियाँ इस कथन की सार्थकता सिद्ध करती हैं। वातावरण की दृष्टि से नयी कहानियों में 'परिन्दे', 'मिस पाल' तथा 'मलबे का मालिक' आदि कहानियाँ उल्लेखनीय हैं।

वातावरण के प्रस्तुतीकरण की दो पद्धतियाँ हैं। पहले प्रकार में विषयारम्भ प्रकृति चित्रण से किया जाता है। इस प्रकार के प्रकृति-चित्रण में कहानी का प्रतिपाद्य सम्पूर्णतः ध्वनित हो जाता है। प्रकृति के खण्ड-चित्रों के विधान के द्वारा कथानक के अर्थ की विवृत्ति होती है और प्रतीक-पद्धति से कथानक का धरातल रसात्मक हो जाता है। प्रकृति का आधार पात्रों की स्थिति को प्राणमय बना देता है।

दूसरे प्रकार की पृष्ठभूमि में देश-काल और परिस्थितियों का आञ्चलिक और स्थानीय रंग उपस्थित किया जाता है। कृतिकार का रचना-कौशल इस बात में है कि वह जीवन की विभिन्न वस्तु-स्थितियों को देश और काल के परिवेश में इस प्रकार प्रस्तुत करे कि स्थानीय चित्र प्रभावपूर्ण हो जाय। वृन्दावनलाल वर्मा की कहानी 'शरणागत' में बुन्देलखण्ड की झलक और उपेन्द्रनाथ अश्क की कहानी 'डाची' में प्रान्तीय भाषा, रीति-रिवाज, वेश-भूषा और क्रिया-कलाप का ऐसा ही चित्र-विधान दिखलायी पड़ता है। इसी प्रकार विभिन्न तत्त्वों के सामूहिक संगठन की दृष्टि से परिवेश की परिधि भी निर्धारित की जाती है। कहानी के इतिवृत्त को विभिन्न परिच्छेदों एवं परिस्थितियों में विभाजित कर दिया जाता है। प्रत्येक विच्छेद का अपना एक अलग परिवेश होता है, जो अपने में पूर्ण होता है।

वातावरण कहानी के इष्ट-प्रतिपादन के लिए और प्रभाव की एकता स्थापित करने के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। करुणा, आश्चर्य, प्रेम, वात्सल्य आदि की सरसता वातावरण के प्रभाव से मुखरित होती है। वातावरण का प्रभाव मानसिक होता है। वह कथ्य की प्रेषणीयता के लिए पाठक के मानस को तैयार करता है। कुछ कहानियों में तो वातावरण इतना प्रधान होता है कि वह अंगी का रूप धारण कर लेता है। ऐसी वातावरण-प्रधान कहानियाँ प्रभाव की दृष्टि से बड़ी सजीव और कल्पनाश्रयी होती हैं।

➥ भाषा-शैली

भावों को अभिव्यक्ति प्रदान करने का माध्यम भाषा है और अभिव्यक्ति का ढंग शैली है। सरल एवं बोधगम्य भाषा के द्वारा ही कहानी को प्रभावशाली बनाया जा सकता है। भाषा की क्लिष्टता और दुरूहता से कथन का अभिप्राय स्पष्ट नहीं हो पाता और

कहानी अस्वाभाविक हो जाती है। काल और पात्र की यथार्थ अभिव्यक्ति के लिए भाषा में स्वाभाविकता अपरिहार्य है। भाषा जितनी ही सरल और भावाभिव्यञ्जक होगी, उतनी ही प्रभावशाली होगी। प्रेमचन्द की कहानियों का प्रभाव पाठकों पर इसीलिए पड़ता है कि उनकी भाषा अत्यन्त सरल और सरस है।

भाषा को समर्थ और प्रभावयुक्त बनाने के लिए शब्दों के चयन पर विशेष ध्यान देना पड़ता है। चित्रात्मकता एवं प्रवाहमयता के साथ-साथ अर्थ की उपयुक्ता भी अपेक्षित है। स्वाभाविक भाषा संवेदनशील होती है। विभिन्न सन्दर्भों में कौन-सा शब्द सही चेतना एवं अर्थ को व्यंजित कर सकता है, इसका चुनाव रचनाकार की कलात्मक संवेदना पर निर्भर करता है। कहानी का आकार अत्यन्त लघु होता है, अतएव सूक्ष्म सन्दर्भों को स्पष्ट करने के लिए भाषा में संकेतों का प्रयोग करना आवश्यक हो जाता है। इस प्रकार की सांकेतिक भाषा से व्यञ्जना-शक्ति बढ़ जाती है। आज की कहानियों में अनुभूति की प्रामाणिकता को चित्रित करने के लिए सांकेतिक भाषा का प्रयोग बढ़ गया है।

साधारण से साधारण कथानक में भी कुशल लेखक अपनी सुन्दर शैली से प्राण-प्रतिष्ठा कर देता है। शब्दों की सम्मोहन-शक्ति के द्वारा वह पाठकों को मन्त्रमुग्ध कर देता है। आधुनिक कहानियों में मनस्तत्त्वों के निरूपण और अवचेतन मन के विभिन्न स्तरों को खोलने के लिए विभिन्न प्रकार की शैलियों का प्रयोग किया जा रहा है। इसी प्रकार प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से कुछ नयी विधियों का प्रयोग किया जाने लगा है। कहीं कहानीकार परिदृश्य पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता हुआ कमेण्टरी की विधि अपनाता है (अमरकान्त की 'घुड़सवार' कहानी) और कहीं 'फ्लैश बैक' यानी पूर्वदीप्ति की विधि का अनुसरण करते हुए पूर्व घटित अंश को सहज रूप से वर्तमान से सन्दर्भित करके प्रस्तुत करता जाता है। शिवप्रसाद सिंह की **'कर्मनाशा की हार'** इसका सशक्त उदाहरण है। दूरवीक्षण और अन्वीक्षण की विधियाँ भी वैज्ञानिक जगत् के अनुभव से ग्रहण की गयी हैं। एक में कहानीकार दूरस्थ वस्तु को निकटस्थ के रूप में चित्रित करता है, दूसरी में वह वस्तु की उस सूक्ष्मता को बहुत बारीकी से प्रस्तुत करता है जो साधारणतः लोगों को दिखायी नहीं देती। भीष्म साहनी की कहानी 'अहं ब्रह्मास्मि' रिपोर्ताज शैली में लिखी गयी ऐसी ही कहानी है जो आधुनिक युग में एक नयी साहित्यिक विधि से सम्बद्ध है।

➥ उद्देश्य

कहानी का उद्देश्य पुष्प में गन्ध की भाँति छिपा रहता है। प्राचीन कहानियों का उद्देश्य आध्यात्मिक विवेचना अथवा नैतिक उपदेश प्रदान करना था। कालान्तर में मनोरञ्जन करना अथवा महान् चरित्र के शौर्य आदि गुणों का प्रदर्शन करना कहानी का उपजीव्य बन गया। मनोरंजन अथवा उपदेश के साथ ही शाश्वत सत्य का उद्घाटन करना भी कथा का एक महत्त्वपूर्ण प्रयोजन है।

प्रेमचन्द-युग में आदर्श की स्थापना और शाश्वत सत्य का उद्घाटन कहानी का प्रमुख उद्देश्य बन गया था।

कोई भी घटना, परिस्थितियाँ और कार्य लेखक के लिए निरपेक्ष रूप से महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। प्रत्येक कहानी के मूल में कोई केन्द्रीय भाव अवश्य छिपा होता है, जो कहानी का मौलिक आधार बनता है। एक ही घटना को लेकर अनेक प्रकार की कहानियाँ लिखी जा सकती हैं, परन्तु प्रत्येक का दृष्टिकोण भिन्न होने के कारण कथा का रूप बदल जाता है। यही कहानीकार की मौलिकता है। कहानी का केन्द्रीय भाव ही वह हेतु या उद्देश्य है, जिसके लिए कहानी लिखी जाती है। संवेदना की विशिष्ट इकाई के मूल में लेखक का एक निर्दिष्ट लक्ष्य होता है। प्रभावान्विति और संवेदनात्मक इकाई के कारण ही कहानी मुक्तक काव्य और एकांकी की समीपवर्ती कही जाती है।

हिन्दी कहानी की विकास-यात्रा

देश में कहानी का आरम्भ वैदिक युग में ही हो गया था। ऋग्वेद के यम-यमी, पुरूरवा-उर्वशी आदि के संवाद, उपनिषदों के रूपात्मक व्याख्यान, नहुष, ययाति आदि के उपाख्यान तथा ऋषियों-मुनियों की कथाएँ भारतीय कहानी के प्राचीनतम रूप हैं। लौकिक संस्कृत में उपदेश और नीतिप्रधान कथाओं का प्राचुर्य मिलता है। वृहद्कथामंजरी, कथासरित्सागर, पंचतन्त्र, हितोपदेश आदि ग्रन्थ तथा मुंज, भोज, विक्रमादित्य आदि के शौर्य और प्रणय की गाथाओं को लेकर लिखी गयी रचनाएँ कहानी के ही प्राचीन रूप हैं। संस्कृत के पश्चात् पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं में बौद्ध और जैन धर्म सम्बन्धी अनेकानेक कथायें लिखी गयी हैं। अपभ्रंश भाषा में चरित्र-काव्यों तथा कथा-काव्यों का लम्बा इतिहास मिलता है।

हिन्दी में आधुनिक कहानी के उदय के पूर्व प्राचीनकाल में संस्कृत और प्राकृत की परम्परा में कथा-साहित्य की रचना हुई। इसका आरम्भिक रूप काव्यमय है। इस कथा-साहित्य की एक परम्परा चारणों तथा अन्य कवियों द्वारा विकसित हुई, जिसमें ऐतिहासिक,

पौराणिक कथा-नायकों में कल्पना का पुट देकर उनके चरित्र-श्रवण से पुण्य का लोभ दिखाया गया। कथा-साहित्य की दूसरी परम्परा सूफियों द्वारा विकसित हुई। मृगावती, मधु-मालती, पद्मावत, चित्रावली, ज्ञानदीप, इन्द्रावती आदि ऐसे ही प्रेमाख्यानक काव्य हैं।

हिन्दी कहानियों का तीसरा प्राचीन रूप 'किस्सा', 'वृत्तान्त' आदि के रूप में मिलता है। भारतेन्दुयुगीन पत्र-पत्रिकायें इस प्रकार की कहानियों से भरी पड़ी हैं। सिंहासनबत्तीसी, बैतालपचीसी, माधवानल-कामकन्दला, राजा भोज का सपना, रानी केतकी की कहानी, देवरानी-जेठानी आदि इसी प्रकार की कहानियाँ हैं। इसी प्रकार संस्कृत-भाषा में कथा-साहित्य की जो पद्धति प्रारम्भ हुई, वह किंचित् परिवर्तन के साथ हिन्दी में भारतेन्दु तक चली आयी है। ये कहानियाँ, कथा, आख्यायिका, वृत्तान्त, वार्त्ता, किस्सा आदि अनेक रूपों में लिखी जाती रही हैं। इनका कोई स्वरूप भी निर्धारित नहीं हो सकता। ये कहानियाँ या कथाएँ गद्य-पद्य दोनों माध्यमों से लिखी जाती थीं। इनमें अप्राकृतिक तथा अतिप्राकृतिक तत्त्वों का प्राधान्य रहता था। भूत-प्रेत, पशु-पक्षी आदि कथा के विकास में सहायक होते थे। घटनाएँ नितान्त अविश्वसनीय और आश्चर्यजनक रहती थीं। इनमें स्वाभाविकता का अभाव था।

आधुनिक कहानी परम्परा और स्वरूप की दृष्टि से प्राचीन कहानी से भिन्न है। आज की कहानी का एक निश्चित लक्ष्य होता है। वह अस्वाभाविक घटनाओं और अतिमानवीय पात्रों का घटाटोप नहीं होती है। आज की कहानी जीवन के बहुत निकट आ गयी है। वह जीवन में यथार्थ की प्रतिच्छाया है। वह आज अभिव्यक्ति का सर्वाधिक सशक्त माध्यम बन गयी है। आज की कहानी मानव जीवन के किसी एक पक्ष अथवा घटना का सूक्ष्मता के साथ चित्रण करती है। इसका सम्बन्ध सामयिक जीवन से होता है। वह यथार्थ को प्रस्तुत करती है।

यूरोपीय कहानी का प्रभाव हिन्दी-कहानी पर आरम्भ में बंगला-कहानी के माध्यम से पड़ा। अमेरिका और यूरोप में आधुनिक कहानी का जन्म 19वीं शताब्दी के प्रथम चरण में हो गया था। वहाँ के प्रारम्भिक कहानी-लेखकों में हाफमैन, जेकब, ग्रिम, हाथर्न, पो, ब्रेटाहार्ट आदि का नाम लिया जाता है। पो ने सर्वप्रथम कहानी का स्वरूप और उसके लक्षण निर्धारित किये। इसी समय रूस में गांगोल, तुर्गनेव आदि कहानियाँ लिख रहे थे।

आधुनिक हिन्दी-कहानी का प्रारम्भ एक प्रकार से द्विवेदीकाल में हुआ। बंगला-भाषा से सम्पर्क, नयी शिक्षा-पद्धति, सामाजिक एवं राजनीतिक आन्दोलन, गद्य के परिष्कार आदि के परिणामस्वरूप इस विधा का सूत्रपात हुआ। सरस्वती, इन्दु, सुदर्शन आदि पत्रिकायें हिन्दी कहानियों की जननी हैं।

हिन्दी की प्रथम आधुनिक कहानी कौन है, इस पर विवाद है। इस सम्बन्ध में सात कहानियों के नाम गिनाये जाते हैं—रानी केतकी की कहानी, इन्दुमती, गुलबहार, प्लेग की चुड़ैल, ग्यारह वर्ष का समय, पण्डित और पण्डितानी तथा दुलाईवाली। रचनाकाल की दृष्टि से इनमें रानी केतकी की कहानी (इंशाअल्ला खां) सबसे पुरानी है। किन्तु कहानी-कला की दृष्टि से उसको आधुनिक नहीं कहा जा सकता। इसकी रचना प्राचीन कथा पद्धति पर हुई है। कथानक, पात्र तथा भाषा सभी इसे प्राचीन कथाओं के निकट ले जाते हैं। शेष छह कहानियों में किशोरीलाल गोस्वामी की 'इन्दुमती' प्रथम है। यह सन् 1900 में 'सरस्वती' में छपी थी। आरम्भ में कुछ आलोचक इसे मौलिक कहानी नहीं मानते थे। वे उसे शेक्सपीयर के 'टेम्पेस्ट' का रूपान्तर प्रमाणित करते थे और रामचन्द्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय' अथवा बंग-महिला की 'दुलाईवाली' को हिन्दी की प्रथम कहानी मानते थे। किन्तु अब यह स्पष्ट हो गया है कि 'इन्दुमती' एक मौलिक कहानी है। अतः यह हिन्दी की प्रथम आधुनिक कहानी मानी जा सकती है।

द्विवेदी-युग में मौलिक और अनूदित दोनों प्रकार की कहानियाँ लिखी गयीं। एक ओर संस्कृत, बंगला, अंग्रेजी आदि भाषाओं से कहानियों के अनुवाद हुए, दूसरी ओर जीवन की झाँकी उपस्थित करनेवाली आदर्शवादी और यथार्थवादी मौलिक कहानियों का भी सृजन हुआ। इस युग के प्रमुख कहानीकारों में किशोरीलाल गोस्वामी, गिरिजाकुमार घोष, गोपालराम गहमरी, विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक', जयशंकर प्रसाद और प्रेमचन्द के नाम उल्लेखनीय हैं। इनके द्वारा सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, वैज्ञानिक आदि सभी विषयों पर कहानियाँ लिखी गयीं। इस काल में घटनाप्रधान, चरित्रप्रधान, वातावरणप्रधान तथा भावप्रधान कहानियों की अधिकता रही है। शैली की दृष्टि से इस समय आत्म-कथात्मक से लेकर स्वप्न-शैली तक में कहानियाँ लिखी गयी हैं। कहानीकारों में पार्वतीनन्दन, सूर्यनारायण दीक्षित तथा रूपनारायण मुख्य हैं। गदाधरसिंह ने 'कादम्बरी' का, जगन्नाथप्रसाद त्रिपाठी ने 'हर्षचरित' और 'रत्नावली' का तथा सूर्यनारायण दीक्षित ने 'जैमिनीकुमार' का अनुवाद किया। बंगला की कहानियों का अनुवाद पार्वतीनन्दन, बंग महिला आदि ने प्रस्तुत किया।

मौलिक कहानीकारों में किशोरीलाल ने सामाजिक कहानियाँ लिखीं। 'चन्द्रिका', 'इन्दुमती' और 'गुलबहार' आपके कहानी-संग्रह हैं। इनकी कहानियों पर जासूसी उपन्यासों का प्रभाव देखा जा सकता है। रामचन्द्र शुक्ल मूलतः निबन्धकार और आलोचक के रूप में प्रसिद्ध हैं, किन्तु उन्होंने 'ग्यारह वर्ष का समय' नामक एक कहानी भी लिखी। इसी प्रकार महावीरप्रसाद द्विवेदी ने कुछ कहानियाँ लिखीं जो 'सरस्वती' के विभिन्न अंकों में प्रकाशित हुईं। 'स्वर्ण की झलक' आपकी प्रसिद्ध कहानी है। इस समय के जासूसी कहानियाँ लिखनेवालों में गोपालराम गहमरी अग्रगण्य हैं। 'त्रिवेणी', 'तीन तहकीकात' तथा 'गल्पपंचक' आपके कहानी-संग्रह हैं। इन कहानियों में उपदेश की प्रवृत्ति पायी जाती है।

द्विवेदी-युग के उत्तरार्द्ध में हिन्दी-कहानी का उत्कर्ष दिखायी पड़ता है। इसमें कहानी-कला का परिष्कार होता है, शिल्प में प्रौढ़ता आती है और घटनाओं की अपेक्षा चरित्र को महत्त्व मिलता है। गुलेरी जी की प्रसिद्ध कहानी 'उसने कहा था' इसी समय 'सरस्वती' में छपी। इसके अतिरिक्त उनकी दो अन्य कहानियाँ 'सुखमय जीवन' तथा 'बुद्धू का काँटा' भी प्रकाश में आयी। 'उसने कहा था' कहानी कलात्मक प्रौढ़ता, नये शिल्प, सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण आदि की दृष्टि से अपने समय तक की सर्वोत्कृष्ट कहानी है। चतुरसेन शास्त्री इस युग के अन्तिम चरण के कहानीकार हैं। 'रजकण', 'अक्षत', 'बाहर भीतर', 'दुखवा मैं कासे कहूँ' आदि आपके प्रमुख संग्रह हैं। आपकी कहानियाँ सामाजिक यथार्थ को लेकर चली हैं। प्रसाद और प्रेमचन्द ने भी इसी समय हिन्दी-कहानी-जगत् में प्रवेश किया।

सन् 1911 में 'इन्दु' नामक पत्रिका का प्रकाशन हुआ और उसी वर्ष प्रसाद की पहली कहानी 'ग्राम' प्रकाशित हुई। उसके बाद प्रसाद जी 'इन्दु' तथा अन्य पत्रिकाओं में निरन्तर कहानियाँ लिखते रहे। ये कहानियाँ पाँच संग्रहों—छाया, प्रतिध्वनि, आकाशदीप, आँधी और इन्द्रजाल में संकलित हैं। प्रसाद जी की कहानियों की पृष्ठभूमि सांस्कृतिक है जिसमें भावुकता, कल्पना और रोमान्स का समन्वय मिलता है। वे प्रेम के उन्मुक्त रूप के पक्षधर थे। उनकी कहानियों में प्रेम के विविध पक्ष और नारी-चरित्र के अनेक रूप देखने को मिलते हैं। प्रसाद जी का नाटककार-रूप भी उनकी कहानियों में देखा जा सकता है। 'आकाशदीप', 'पुरस्कार' आदि कहानियों में नाटकीय संवादों और अभिनयात्मक पद्धति से पात्रों के चरित्र विकसित होते हैं। उनकी कहानियों की भाषा संस्कृतनिष्ठ और काव्यात्मक है। भारतीय संस्कृति के परिवेश में लिखी गयी उनकी कहानियाँ आदर्शवादी वर्ग में आती हैं।

हिन्दी में प्रेमचन्द की पहली कहानी 'सौत' सन् 1915 में 'सरस्वती' में छपी थी, यद्यपि उसके पूर्व वे धनपतराय और नवाबराय के नाम से उर्दू में कई कहानियाँ लिख चुके थे। सन् 1936 तक उन्होंने लगभग 300 कहानियों की रचना की, जो हिन्दी की प्रमुख पत्रिकाओं (सरस्वती, माया, जागरण, मर्यादा, माधुरी, हंस, विशाल भारत आदि) में छपती रहीं। प्रेमचन्द अपने युग के श्रेष्ठतम कहानीकार थे। उन्होंने हिन्दी कहानी को विस्तृत आयाम दिया और कहानी को केवल मनोरंजन तक सीमित न रखकर जीवन से जोड़ा। कथानक के आधार पर उनकी कहानियों के तीन वर्ग बनाये जा सकते हैं– घटनाप्रधान, चरित्रप्रधान और भावप्रधान। उन्होंने अपने समय तक प्रचलित सभी शैलियों को अपनाया तथा सामाजिक, राजनीतिक, पौराणिक, ऐतिहासिक आदि सभी विषयों पर कहानियाँ लिखीं। प्रेमचन्द की प्रारम्भिक कहानियों में घटनाओं की प्रधानता है। दूसरे चरण की कहानियों में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक समस्याओं को उठाकर उनका आदर्शमूलक समाधान खोजने की चेष्टा की गयी है।

राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह इस युग के आदर्शवादी कहानीकार हैं। 'कानों में कँगना' उनकी प्रसिद्ध कहानी है। विश्वम्भरनाथ और ज्वालादत्त शर्मा भी इसी युग के कहानीकार हैं। विश्वम्भरनाथ की कहानियों का एक संग्रह 'घूँघटवाली' उपलब्ध है। विश्वम्भरनाथ ने नारी-जीवन के विभिन्न पक्षों को अपनी कहानियों में उद्घाटित किया है। शर्मा जी भी प्रेमचन्द की परम्परा के कहानीकार हैं। उन्होंने अपनी कहानियों में सामाजिक कुरीतियों और अंधविश्वासों पर प्रबल कशाघात किया है। उनका दृष्टिकोण सुधारवादी था। वृन्दावनलाल वर्मा इस युग के ऐतिहासिक कथाकार हैं। इनकी कहानियों में बुन्देलखण्ड का जीवन उभरकर आया है। 'राखी', 'कलाकार का दण्ड', 'युद्ध के मोर्चे से' आदि इनकी लोकप्रिय कहानियाँ हैं। जी० पी० श्रीवास्तव की कहानियाँ हास्य-व्यंग्य की शैली में लिखी गयी हैं। 'लम्बी दाढ़ी' उनकी अच्छी कहानियों का संग्रह है।

द्विवेदी-युग के पश्चात् हिन्दी-कहानी में शिल्प एवं विषय दोनों दृष्टियों से परिवर्तन होता है। सामयिक, राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियाँ हिन्दी-कहानी को भी प्रभावित करती हैं। राजनीति के क्षेत्र में यह समय अत्यन्त कोलाहल एवं अशान्ति का था। गाँधी के नेतृत्व में स्वाधीनता-आन्दोलन प्रबल होता जा रहा था। उधर सरकारी दमन भी उग्र होता जा रहा था। सन् 1914-19 में प्रथम विश्वयुद्ध हुआ। राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्थितियों पर उसका व्यापक प्रभाव, सन् 1930 की गोलमेज परिषद्, सन् 1939 में काँग्रेस मन्त्रिमण्डलों द्वारा त्यागपत्र, द्वितीय विश्वयुद्ध, सन् 1942 की जनक्रान्ति और 15 अगस्त, 1947 को भारत का स्वाधीन होना इन घटनाओं की पृष्ठभूमि में हिन्दी-कहानी का स्वरूप-परिवर्तन स्वाभाविक था। फलतः घुटन, निराशा, कुण्ठा का स्वर कहानी में आ गया। इस समय सामाजिक युग-बोध और यथार्थपरक कहानियाँ लिखी गयीं। कुछ कहानियाँ आत्मपरक दृष्टिकोण को भी लेकर लिखी गयीं। इस युग की कहानियाँ कथानक की दृष्टि से दो प्रकार की हैं—स्थूल कथानकवाली कहानियाँ, सूक्ष्म कथानकवाली कहानियाँ। विषय की दृष्टि से इस युग में सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, राजनीतिक, सैद्धान्तिक और ऐतिहासिक कहानियाँ लिखी गयीं। इस युग की कहानियों का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण लक्षण है–उनका शैलीगत वैविध्य। नवीनता की दृष्टि से नाटकीय शैली (यशपाल : उत्तराधिकारी, रांगेय राघव : मृत्यु), पत्रात्मक शैली (अज्ञेय : सिग्नलर), डायरी-शैली (इलाचन्द्र जोशी : मेरी डायरी के नीरस पृष्ठ), प्रतीक-शैली (जैनेन्द्र : पाजेब), स्वगत-शैली (जैनेन्द्र : क्या हो) तथा स्वप्न-शैली (अज्ञेय : चिड़ियाघर) विशेष ध्यान आकर्षित करती हैं।

इस युग के प्रमुख कहानीकार हैं—जैनेन्द्रकुमार, सियारामशरण गुप्त, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी, यशपाल, भगवतीचरण वर्मा, अमृतलाल नागर, उपेन्द्रनाथ अश्क, रांगेय राघव, विष्णु प्रभाकर, अमृतराय आदि। जैनेन्द्रकुमार बुद्धिवादी लेखक हैं। उनकी कहानियों में व्यक्तिगत चरित्र एवं जीवन-दर्शन का वैशिष्ट्य मिलता है। उनके पात्रों का चरित्र-विश्लेषण मानसिक द्वन्द्व एवं घात-प्रतिघात से हुआ है। सियारामशरण गुप्त आदर्शवादी कहानीकार हैं। वे पिछली परम्परा के अधिक निकट हैं। उनकी कहानियों का संग्रह 'मानसी' नाम से प्रकाशित हुआ है। अज्ञेय मनोवैज्ञानिक कहानीकार हैं। इनके प्रमुख कहानी संग्रह हैं—'विपथगा', 'परम्परा', 'कोठरी की बात', 'शरणार्थी' और 'जयदोल'। अज्ञेय फ्रायड के दर्शन से बहुत प्रभावित हैं, इसीलिए उनकी कहानियों में सेक्स सम्बन्ध, कुण्ठा और घुटन का मनोविश्लेषण मिलता है। यशपाल मार्क्सवादी विचारधारा के प्रगतिशील लेखक हैं। वर्ग-वैषम्य और आर्थिक-वैषम्य उनकी कहानियों में मुख्य रूप से उभरे हैं। भगवतीचरण वर्मा ने अपनी कहानियों में मध्यवर्गीय जीवन को यथार्थवादी अभिव्यक्ति दी है। उनकी कहानियों का धरातल अपेक्षाकृत वैयक्तिक एवं बौद्धिक है।

अमृतलाल नागर यथार्थवादी कहानीकार हैं। ग्राम्य जीवन की नग्न और वास्तविक परिस्थितियाँ उनकी कहानियों में पायी जाती हैं। उनकी शैली व्यंग्यात्मक है। अश्क जी की कहानियों में निम्न-वर्ग का यथार्थपरक चित्रण मिलता है। 'पलंग' उनकी कहानियों का अच्छा संग्रह है। उन्होंने समस्या प्रधान एवं मनोवैज्ञानिक कहानियाँ भी लिखी हैं। रांगेय राघव की कहानियाँ प्रगतिशील दृष्टिकोण से प्रभावित हैं। अमृतराय भी समाजवादी विचारधारा के कहानीकार हैं। 'एक साँवली लड़की', 'कस्बे का एक दिन' आदि उनकी श्रेष्ठ कहानियाँ हैं।

स्वतन्त्रता के बाद आधुनिक कहानी में एक युगान्तर आया है। नयी कहानी के प्रथम चरण में ग्राम-कथाओं में भी ठहराव आ गया था। मनोवैज्ञानिक फार्मूलों अथवा नारेबाजी से भरा यथार्थवाद अब आकर्षण की वस्तु नहीं रह गया। इसी समय ग्रामीण क्षेत्रों से आये लेखकों ने ताजगी से भरे ग्राम-जीवन को नये शैली-शिल्प में प्रस्तुत किया। उनकी कहानियाँ पहले की कहानियों से भिन्न थीं। इन कथाकारों ने खण्डित जीवन की विभिन्न समस्याओं को लेकर कहानी के क्षेत्र में शिल्प और विषय की दृष्टि से नये प्रयोग किये हैं।

युगीन परिस्थितियों ने कहानी के स्वरूप-निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है। स्वतन्त्रता के बाद देश के समक्ष अनेक समस्याएँ उपस्थित हो गयी हैं। सब कुछ पुराना ध्वस्त हो रहा और नयी रूप-रेखा प्रस्तुत हो रही है। सामाजिक जीवन और विचार दोनों ही क्षेत्रों में उत्क्रान्ति हो रही है। फलतः साहित्यकार के ऊपर नयी जिम्मेदारियाँ आयी हैं। प्रतिदिन स्थितियों में परिवर्तन हो रहा है और इस नवीन सामयिक सन्दर्भ से नयी कहानी भी प्रभावित है। कहानीकारों के सामने भाव-बोध के नवीन स्तर, सौन्दर्य-बोध के नये आयाम और कल्पना के नये क्षितिज उद्घाटित हो रहे हैं।

प्रेमचन्दोत्तर कहानियों में पिछले बीस वर्षों तक शहरी मध्यवर्गीय एवं निम्न-मध्यवर्गीय जीवन का चरित्र अंकित किया जाता रहा है। बाद के कथाकारों का ध्यान ग्रामीण सन्दर्भों की ओर गया। गाँव का जीवन तेजी से बदल रहा है। इस परिवर्तित जीवन-धरातल का स्वरूप आञ्चलिक कथाओं में बड़े सजीव और यथार्थ रूप में उभरता रहा है। स्वातन्त्र्योत्तर काल में कहानी के अन्तर्गत यान्त्रिक जड़ता, व्यक्ति की कुण्ठा, मानसिक उलझन, संक्रमणकालीन मनःस्थिति आदि का चित्रण हो रहा है। नयी पीढ़ी के इन कथाकारों के प्रथम वर्ग में रेणु, मार्कण्डेय, भारती, निर्गुण, शैलेश मटियानी, शिवप्रसाद सिंह, शेखर जोशी, शिवानी आदि प्रमुख हैं। दूसरे वर्ग के कहानीकारों में मोहन राकेश, कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, मन्नू भण्डारी, निर्मल वर्मा, रघुवीर सहाय, भीष्म साहनी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इनमें नगर-जीवन की जटिलताओं का विशेष अंकन हुआ है। इस युग की कहानियों में भोगे हुए जीवन को अभिव्यक्ति मिली है तथा संवेदना और सूक्ष्म निरीक्षण के सशक्त धरातल प्रकट हुए हैं। शहर और गाँव की भेदक-रेखा छोटी हुई है। शब्द-प्रयोग और शैली का तौर-तरीका बदला है। बिम्ब और सांकेतिकता के नये सन्दर्भ दिखलायी पड़ते हैं।

नयी कहानी का नया आन्दोलन जन्म ले रहा है और नये एवं पुराने के विवाद का दौर चल रहा है। आरम्भ में कहानी का जो शिल्प स्वीकार किया गया था, उसका उत्तरोत्तर विकास हुआ है। साठोत्तरी पीढ़ी के कहानीकारों की दृष्टि निःसन्देह अधिक खरी और प्रश्नात्मक है। ज्ञानरंजन की 'घण्टा', काशीनाथ सिंह की 'सुख', दूधनाथ सिंह की 'रक्तपात', रवीन्द्र कालिया की 'नौ साल छोटी पत्नी', महेन्द्र भल्ला की 'एक पति के नोट्स' आदि कहानियाँ युग के नये भयावह विडम्बनापूर्ण सम्बन्धों का साक्षात्कार करती हैं। गिरिराज किशोर, विजयमोहन सिंह, गोविन्द मिश्र, ममता कालिया, प्रयाग शुक्ल आदि की कहानियाँ आज के जटिल सन्दर्भों को उजागर करती हैं। इस प्रकार आज की हिन्दी कहानी शिल्प और कथ्य दोनों दृष्टियों से विश्व की कहानियों के समकक्ष आ गयी है।

●●●

संकलित कहानियों का सारांश

बलिदान

बलिदान कहानी जमींदारी के दिनों की एक काश्तकार किसान गिरधारी की कहानी है। ग्रामीण क्षेत्रों में धनवान ही प्रभावशाली होता है। गिरधारी के पिता हरखू की आर्थिक स्थिति अच्छी थी। उनकी पाँच बीघा जमीन कुएँ के निकट, खाद-पाँस से लदी हुई मेड़-बाँध से ठीक थी। उनमें तीन-तीन फसलें पैदा होती थीं। समय बदलता है। हरखू बीमार पड़ गया। पाँच महीने कष्ट भोगने के बाद ठीक होली के दिन उसकी मृत्यु हो गयी। गिरधारी ने बड़ी धूमधाम से पिता की अन्तिम क्रिया कराई। कुछ दिनों के बाद जमींदार ओंकारनाथ ने गिरधारी को बुलाकर कहा कि नजराना देकर जमीन अपने पास रखो, हम लगान नहीं बढ़ाएँगे। वैसे तुम्हारी जमीन लेने के लिए गाँव के कई लोग दूना नजराना और लगान देने के लिए तैयार हैं। नजराना सौ रुपये से कम न होगा। गिरधारी उदास और निराश होकर घर लौट आया। वह सभी विकल्पों पर सोचता रहा किन्तु सौ रुपये की व्यवस्था करना असम्भव हो गया। तब जो होना था, वही हुआ। गाँव के ओंकारनाथ ने उसकी जमीन अपने नाम करा लिया। उस दिन घर में चूल्हा नहीं जला, ऐसा लगा उसका बाप हरखू आज ही मरा है। वह अब तक गृहस्थ था, समाज में मान था, उसकी मर्यादा थी। अब उसे मजदूरी करनी पड़ेगी। कुछ ही दिनों में उसके बैल भी बिक गये जिनकी चिन्ता उसे अपने से अधिक थी। बैलों के चले जाने के बाद वह अन्दर से टूट गया। रात को गिरधारी ने कुछ नहीं खाया। चारपायी पर पड़ा रहा। सुबह उसकी पत्नी ने उसे चारों तरफ ढूँढ़ा किन्तु वह कहीं नहीं मिला। चारों ओर खोज होने लगी, पर गिरधारी का पता नहीं चला। गिरधारी को गायब हुए 6 महीने बीत गये। एक दिन सुबह उसकी पत्नी सुभागी ने देखा कि गिरधारी बैलों के नाँद के पास सिर झुकाये खड़ा है। सुभागी उसकी तरफ बढ़ी तो गिरधारी पीछे हटता हुआ गायब हो गया। इसी तरह एक दिन सुबह अँधेरे कालिकादीन हल-बैलों को लिये खेत पर पहुँचा और बैलों को हल में लगा रहा था कि देखा कि गिरधारी खेत की मेड़ पर खड़ा है। वह उससे बात करने आगे बढ़ा। गिरधारी पीछे हटने लगा और पीछेवाले कुएँ में कूद पड़ा। कालिकादीन हल-बैल छोड़ चीखकर गाँव में भागा। सारे गाँव में शोर मच गया। कालिका को गिरधारीवाले खेतों में जाने की हिम्मत न पड़ी। कालिकादीन ने गिरधारी के खेतों से इस्तीफा दे दिया क्योंकि गिरधारी अपने खेतों के चारों ओर मँडराया करता था। अँधेरा होते ही वह खेत के मेड़ पर आकर बैठ जाता है। कभी-कभी रात में उसके रोने की आवाज सुनाई पड़ती है। वह किसी से न बोलता है और न किसी को छेड़ता है। लाला ओंकारनाथ बहुत चाहते हैं कि कोई इन खेतों को ले ले किन्तु लोग नाम लेने से ही डरने लगते हैं। गिरधारी ने खेतों के लिए आत्म-बलिदान दे दिया था।

आकाशदीप

आकाशदीप महाकवि अमर कहानीकार जयशंकर प्रसाद की कालजयी कहानियों में से एक है। कहानी की मुख्य पात्र चम्पा जाह्नवी नदी के तट पर बसी चम्पा-नगरी की क्षत्रिय बालिका थी। उसके पिता व्यवसायी मणिभद्र के यहाँ प्रहरी का काम करते थे। माता का देहावसान हो जाने पर वह भी पिता के साथ नाव पर ही रहने लगी। पिछले आठ वर्षों से समुद्र ही उसका घर। बुद्धगुप्त के आक्रमण के समय चम्पा के पिता ने आठ जल दस्युओं को मारकर जल समाधि ली थी। एक महीने से वह नीले आकाश और नीचे समुद्र के ऊपर निस्सहाय, अनाथ होकर रह रही है। एक दिन मणिभद्र ने उससे घृणित प्रस्ताव किया। उसने उसे गालियाँ सुनाईं। उसी दिन से वह बन्दी बना दी गई। अपनी आत्मकथा बुद्धगुप्त को वह उस समय सुनाई जब दोनों बन्दी जीवन से मुक्त हो गये थे। बुद्धगुप्त भी ताम्रलिप्ति का एक क्षत्रिय युवक था। दुर्भाग्य से जलदस्यु बन गया था। उसी के आक्रमण में चम्पा के पिता की मृत्यु हुई थी। बाद में किसी आक्रमण में बुद्धगुप्त भी बन्दी हो गया था। संयोग से दोनों बन्दी एक ही नाव पर थे। रात्रि में समुद्री आँधी में नाव डगमगाने लगी, अँधेरा घिर गया था। हवा के कोलाहल में कुछ सुनाई नहीं पड़ रहा था। उसी समय चम्पा बुद्धगुप्त से स्वतन्त्र होने का अवसर बताकर उसे एक नाविक की कटार लाकर देती है। बन्दी स्वतन्त्र होकर ढुलककर उस रज्जु के पास पहुँचा जो पोत से संलग्न थी। उसने रज्जु काट दी। नाव पोत से स्वतन्त्र

हो गयी। सुबह बुद्धगुप्त ने नायक को वशीभूत करके नाव का स्वामी बन गया। वे दोनों एक नये द्वीप पर पहुँचे। उस द्वीप का नाम चम्पा-द्वीप रखा गया। चम्पा और बुद्धगुप्त ने उसे अपना स्थायी निवास बनाया। चम्पा ने बुद्धगुप्त के कठोर हृदय में कोमलता पैदा कर दी थी। बुद्धगुप्त व्यापार करने लगा। द्वीप पर महानाविक बुद्धगुप्त को वहाँ के निवासी राजा और चम्पा को महारानी के रूप में मानकर उनकी सेवा में लगे रहते थे। चम्पा प्रतिदिन समुद्र के तट पर ऊँचे स्थान पर दीपक जलाया करती थी और उसे रस्सी की सहायता से ऊँचे स्थान पर पहुँचाती थी। एक दिन महानाविक ने पूछा कि ऐसा तुम क्यों करती हो तो चम्पा ने कहा, मैं अपने पिता के लिए, भूले-भटके लोगों को पथ दिखाने के लिए दीप जलाती हूँ। भगवान् भी भटकते हैं, भूलते हैं, नहीं तो बुद्धगुप्त को इतना ऐश्वर्य क्यों देते? 'तो इसमें बुरा क्या हुआ, इस द्वीप की अधीश्वरी चम्पारानी।' बुद्धगुप्त ने कहा। चम्पा कहती है कि यह सब मुझे अच्छा नहीं लगता। वे दिन अच्छे थे जब खुले आकाश में हम लोग परिश्रम से थक कर पालों से शरीर लपेट कर पड़े रहते थे। बुद्धगुप्त ने कहा, ''तो चम्पा हम अब और अच्छे से रह सकते हैं। तुम मेरी प्राणदात्री, मेरी सर्वस्व हो।'' चम्पा अपनी माँ एवं पिता का जीवन स्मरण करते हुए क्रोधावेश में कहती है, ''मेरे पिता, वीर पिता की मृत्यु के निष्ठुर कारण, जलदस्यु! हट जाओ!'' बुद्ध बहुत प्रयास करता है कि चम्पा उसे क्षमा कर दे किन्तु चम्पा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। वह कहता है, ''आह चम्पा तुम इतनी निर्दय हो! यदि आज्ञा दो तो मैं अपना हृदय पिण्ड निकालकर अतल जल में विसर्जन कर दूँ।'' चम्पा कहती है, ''मैं तुमसे घृणा करती हूँ, फिर भी तुम्हारे लिये मर सकती हूँ। अँधेर है जलदस्यु। तुम्हें प्यार करती हूँ।'' बुद्धगुप्त कहता है, ''इस जीवन की पुण्यतम घड़ी की स्मृति से एक प्रकाश-गृह बनवाऊँगा, चम्पा! यहीं उस पहाड़ी पर। संभव है कि मेरे जीवन की धुँधली संध्या उससे आलोकपूर्ण हो जाय।'' द्वीप स्तम्भ बनवाया गया। भव्य समारोह में चम्पा को बताया गया कि आज रानी की शादी होगी। चम्पा बुद्धगुप्त को फटकारती है। बुद्धगुप्त चम्पा के पैर पकड़ लिये और कहा कि तुम्हारे पिता का घातक नहीं हूँ। वह बहुत अनुनय-विनय करता है। किन्तु चम्पा कहती है, ''तुम स्वदेश लौट जाओ, मैं इन निरीह भोले-भाले प्राणियों की सेवा करूँगी।'' महानाविक स्वदेश चला गया। चम्पा उसी द्वीप पर रहकर आजीवन द्वीप-स्तम्भ पर दीप जलाती रही। वह भी जलती रही जैसे आकाश-दीप।

प्रायश्चित

कबरी बिल्ली से परेशान राम की बहू के लिए खाना-पीना दुश्वार हो गया था, किन्तु कबरी बिल्ली घर भर में किसी से प्रेम करती थी, तो रामू की बहू से। रामू की बहू दो महीने हुए मायके से ससुराल आयी थी। पति की प्यारी, सास की दुलारी, चौदह वर्ष की बालिका को भण्डार-घर की चाभी सौंप दी गयी थी। परिपक्वता के अभाव में वह सावधान नहीं रहती थी। कबरी बिल्ली रामू की बहू की असावधानी का लाभ उठाकर दूध, घी, मक्खन प्रतिदिन चट कर जाती थी। इस कारण उसे मिलती थी सास की मीठी झिड़कियाँ और पतिदेव को मिलता था रूखा-सूखा भोजन। एक दिन रामू के लिए खीर बनायी और कटोरा भरकर उसे ऐसे ऊँचे ताक पर रखा ताकि कबरी बिल्ली वहाँ तक न पहुँच सके फिर वह जाकर पान लगाने लगी। इसी बीच न जाने कहाँ से कबरी बिल्ली आयी, नीचे खड़े होकर ऊपर देखा, सूँघा और उछल कर ताक से कटोरा गिरा दिया। रामू की बहू आयी तो देखा फूल का कटोरा टुकड़े-टुकड़े और फर्श पर बिल्ली खीर उड़ा रही है। उसे देखकर बिल्ली चम्पत हो गयी। उसी दिन रामू की बहू कबरी की हत्या करने के लिए कमर कस ली। उस पर खून सवार हो गया। रात भर उसे नींद नहीं आयी। सुबह देखती है कि कबरी देहरी पर बैठी बड़े प्रेम से उसे देख रही है। वह मुस्कराती हुई उठी। उसे उठते देख बिल्ली खिसक गयी। रामू की बहू एक कटोरा दूध कमरे के दरवाजे पर रखकर चली गयी फिर पाटा लेकर लौटी, कबरी दूध पर जुटी हुई थी। उसने पाटा बिल्ली पर फेंका, कबरी एकदम उलट गयी। महरी दौड़ी आयी–''अरे राम! बिल्ली तो मर गयी।'' सासू आयीं फिर गाँव की औरतें। पूरे गाँव में बिल्ली की हत्या की खबर फैल गयी। पण्डित परमसुख बुलाये गये। उन्होंने कहा कि बिल्ली की हत्या ऐसा-वैसा पाप नहीं, रामू की माँ! बहू के लिए कुम्भीपाक नरक है। बहुत मिन्नत के बाद पण्डित जी ने कहा कि प्रायश्चित के लिए ग्यारह तोला सोना निकालो, मैं उसकी बिल्ली बनवा लाऊँ। दो घण्टे में लौटूँगा तब तक पूजा का प्रबन्ध करो और देखो पूजा के लिए.....। पण्डित जी की बात खतम नहीं हुई थी कि महरी हाँफती हुई कमरे में घुसी और सबको चौंकाते हुए बोली–''माँ जी! बिल्ली तो उठकर भाग गयी।''

समय

यह एक नौकरीपेशा मध्यम परिवार की कहानी है। नौकरी से रिटायर होने के बाद अवकाश का बोझ चिन्ता का कारण बन जाता है। बच्चे बड़े हो जाते हैं। पीढ़ी का अन्तर, विचारों का अन्तर सब अपने-अपने व्यक्तित्व के अनुसार गतिमान रहते हैं। वृद्धावस्था की संवेदना पीढ़ी के अन्तर से प्रभावित होती है। कथा के नायक पापा का विचार था कि रिटायर होने के बाद अध्ययन का मनचाहा

अवसर होगा, दूसरों के आदेश से मुक्ति मिलेगी। पापा को बूढ़े और बुजुर्ग समझे जाने से सदा विरक्ति रही है। सर्विस के दौरान वे गर्मियों में महीने-दो-महीने हिल स्टेशनों पर चले जाते थे किन्तु अब वे पहाड़ पर जाना छोड़ चुके हैं। पहले जब पहाड़ जाते तो चढ़ाइयों पर सुविधा के लिए छड़ियाँ जरूर खरीदते थे किन्तु लौटने पर छड़ी का प्रयोग नहीं करते थे। वे सोचते थे कि छड़ी टेककर चलना बुढ़ापे या बुजुर्गी के लक्षण हैं, किन्तु वे स्वयं को स्वस्थ अनुभव करते थे। वे सुबह-शाम टहलने जाते तो केवल अपनी पत्नी के साथ। बच्चों को नौकरानी के साथ बाहर भेज देते थे। सर्विस के दौरान जब कभी बच्चे साथ होते तो बच्चों के ठुनकने से ही मनचाही चीज उन्हें मिल जाती थी। वे बच्चों को डाँटते-धमकाते नहीं थे। अवकाश-प्राप्ति के बाद वे नियमित कार्यक्रम के अनुसार काम में स्वयं को व्यस्त रखते थे। हल्की-फुल्की चीजें खरीदने के लिए वे सन्ध्या समय पैदल ही हजरतगंज चले जाते थे। अवकाश-प्राप्ति के बाद उनके स्वभाव और व्यवहार में अनेक परिवर्तन आये। पहले उन्हें अपने लिये अच्छी बढ़ियाँ चीजें खरीदने का और अच्छी पोशाक का शौक था किन्तु अब वे नये कपड़े के अनुरोध को टाल कर पुराने कपड़ों को पर्याप्त बताते थे। पापा के बच्चों को बाजार साथ न ले जाने के रवैये में भी अन्तर आया। अब वे किसी-न-किसी को साथ ले जाना चाहते थे। सुबह-शाम किसी को साथ लेकर टहलने जाना पसन्द करने लगे। अब वे छड़ी लेकर भी चलने लगे। लगभग एक वर्ष से उनकी नजर पर आयु का प्रभाव हो रहा था। अधिक देर तक पढ़ने-लिखने से धुँधलापन अनुभव होने लगा था। सड़क पर कम प्रकाश में ठोकर लगने और अधिक चकाचौंध से परेशानी अनुभव करते थे। स्थिति यह पैदा हो गयी थी कि वे बिना किसी को साथ लिये बाहर नहीं जा सकते थे। एक दिन ऐसा हुआ कि कोई उनके साथ जाने के लिए तैयार नहीं हुआ। कहने पर मन्टू भी नहीं गया। उसने पुष्पा दीदी से कहा–''तुम भी क्या दीदी....बोर....बुड्ढों के साथ कौन बोर हो।'' पापा हैंगर से कोट पहनने जा रहे थे। शायद ये बातें सुनकर एक विचित्र, विषण्ण-सी मुस्कान के साथ कोट हाथ में लिये कुर्सी पर बैठ गये। नजर फर्श की ओर झुक गयी।

ध्रुव-यात्रा

राजा रिपुदमन उत्तरी ध्रुव की यात्रा सफलतापूर्वक पूर्ण करके लौटते समय यूरोप के नगरों में जहाँ-जहाँ रुके वहाँ उनका भरपूर सम्मान हुआ। अखबारों में प्रकाशित इस खबर को पढ़कर उर्मिला प्रसन्न होकर अपने सोते शिशु का चुम्बन लिया। कई दिन तक अखबारों में ध्रुवयात्रा की खबर छपती रही और उर्मिला उसे पढ़ती रही। रिपुदमन मुम्बई आ पहुँचे, वहाँ भी उनका भरपूर स्वागत हुआ। शिष्टमण्डल के अनुरोध पर राजा रिपुदमन दिल्ली आये। वे सबसे सौजन्य से मिलते हैं। ऐसा लगा कि उन्हें प्रदर्शनों में उल्लास नहीं है। एक संवाददाता ने लिखा कि मैं मिला तो उनके चेहरे से ऐसा लगा कि वे यहाँ न हों, जाने कहीं दूर हों। उर्मिला ने इसे पढ़ा और अखबार अलग रख दिया। रिपुदमन ने यूरोप में आचार्य मारुति की ख्याति सुनी थी किन्तु दिल्ली में रहकर भी वे आचार्य मारुति को नहीं जानते थे। अवकाश पाते ही वे आचार्य मारुति के पास पहुँचे। अभिवादन के बाद मारुति ने पूछा कि वैद्य के पास रोगी आते हैं विजेता नहीं तो रिपुदमन ने कहा कि मुझे नींद नहीं आती, मन पर मेरा काबू नहीं रहता। आचार्य मारुति और राजा रिपुदमन में काफी देर तक बातें हुईं। रिपुदमन विवाह को बन्धन मानता है किन्तु प्रेम से इनकार नहीं करता है। एक दिन राजा रिपुदमन सिनेमा हाल के एक बाक्स में उर्मिला से मिलता है। उर्मिला उसकी प्रेमिका और उसके बेटे की माँ है। यह बात उन दोनों के अलावा तीसरा व्यक्ति नहीं जानता है। काफी बातें होती हैं। बच्चे का नाम रिपुदमन माधवेन्द्र बहादुर रखता है। उर्मिला पूछती है कि तुम अपना काम बीच में छोड़कर क्यों चले आये? वह कहती है तुम्हें मेरी और मेरे बच्चे की चिन्ता करना काम नहीं है। रिपुदमन कहता है कि मैं केवल तुम्हारा हूँ, तुम जो कहोगी वही करूँगा। क्या तुम अब भी नाराज हो। उर्मिला कहती है कि मुझे तुम पर गर्व है। तुम्हारा काम अब दक्षिणी ध्रुव पर विजय करना है, तुम्हें जाना ही होगा। यदि मेरे कारण तुम नहीं जाओगे तो मैं अपने को क्षमा नहीं कर पाऊँगी। मारुति की बात चलती है तो उर्मिला उसे ढोंगी कहती है किन्तु रिपुदमन के कहने पर वह मारुति के पास जाती है किन्तु उसके कहने पर विवाह के लिए तैयार नहीं होती है। मारुति रिपुदमन को बताता है कि उर्मिला उसकी सगी पुत्री है। उसे विवाह करके साथ रहना चाहिए। वह भी यही चाहता है किन्तु उर्मिला के हठ के कारण वह तीसरे दिन दक्षिणी ध्रुव जाने के लिए अमेरिका फोन पर बातें कीं और बताया कि परसों शटलैण्ड द्वीप के लिए पूरा जहाज हो गया है। उर्मिला के कुछ दिन रुकने के लिए कहने पर वह रुकने के लिए तैयार नहीं हुआ। इस खबर से अखबारों में धूम मच गयी। वह दिन भी आ गया जब रिपुदमन उससे दूर चला गया। उर्मिला कल्पनाओं में बहुत कुछ सोचती रहती थी। किन्तु अचानक तीसरे दिन उर्मिला ने अखबार में पढ़ा कि राजा रिपुदमन सबेरे खून में भरे पाये गये। गोली का कनपटी के आर-पार निशान था। मृतक के तकिये के नीचे मिले पत्र का आशय था–यह यात्रा निजी थी। किसी के वचन को पूरा करने जा रहा था। ध्रुव पर भी बचना नहीं था। अब भी नहीं बचूँगा। भगवान् मेरे प्रिय के अर्थ और मेरी आत्मा की रक्षा करें।

●●●